Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मधु-सञ्चय

Madhu Sanchayi

Bal Krishen Rau

सम्पादक

श्री बालकृष्ण राव

SPS
891.431 B 17 M
19688

Atma Ram & Sons
Delhi

१९५२

1952

आत्माराम एण्ड संस
प्रकाशक तथा पुस्तक विक्रेता
कश्मीरी गेट, दिल्ली।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मधु-सञ्चय

Madhu Sanchayi

Bal Krishen Raw

सम्पादक

श्री बालकृष्ण राव

SPS
891.431 B 17 M
19688

Atma Ram & Sons
Delhi

१६५२

आत्माराम एण्ड संस

1952

प्रकाशक तथा पुस्तक विक्रेता

कश्मीरी गेट, दिल्ली ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

10588
Rs 2.50 (5)
@ 2.1.1958

प्रकाशक
रामलाल पुरी,
आत्माराम एन्ड संस,
काश्मीरी गेट, दिल्ली।

मूल्य
दो रुपया आठ आना

Sri Pratap Singh
Library
Srinagar.

मुद्रक
श्यामकुमार गर्ग,
हिन्दी प्रिन्टिंग प्रेस,
क्वीन्स रोड, दिल्ली।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

294
A153

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भूमिका

'मधु-सञ्चय' नामक यह कविता-संग्रह इंटरमीडिएट कक्षाओं में पाठ्य-पुस्तक के रूप में पढ़ाये जाने के लिए प्रस्तुत किया गया है, इस संकलन की सामग्री जुटाने में शिक्षा-विभाग द्वारा निर्धारित पाठ्य-क्रम का पूरी तरह निर्वाह करने के साथ-साथ हमने उन सिद्धान्तों का भी ध्यान रखा है जिनके द्वारा अध्येता के मन में काव्यानुशीलन के प्रति सहज अनुराग उत्पन्न होता है। केवल भाषा-बोध या सामान्य कवि-परिचय तक ही हम इन कक्षाओं के छात्रों को सीमित नहीं कर सकते। यथार्थ में इन कक्षाओं में कविता पढ़ने-पढ़ाने का एक विशेष प्रयोजन है। जिस कवि की कविता विद्यार्थी पढ़ें उसकी प्रमुख प्रवृत्ति को हृदयंगम करके उस काल में उसका स्थान और मूल्य भी वे उसकी कृति के आधार पर निर्धारित कर सकें तो उनका कविता पढ़ना सफल होगा। यह तभी संभव है जब संकलन में कवि के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का प्रतिनिधित्व करने वाली रचनाएं संकलित हों। कवि के अन्तर में पैठने के लिए उसकी प्रतिनिधि रचनाएं अवश्य पढनी चाहिएं। हमने इस संचय में इस सिद्धान्त का पूरी तरह पालन किया है। पाठ्य-पुस्तक के रूप में चुनी हुई कविताएं एकत्र करने में कुछ कठिनाई अवश्य होती है। वे ही कविताएं पाठ्य-पुस्तक में होनी चाहिएं जो छात्रों के अन्तर में उदात्त भावनाओं की सृष्टि करके उन्हें उत्कर्ष की ओर प्रेरित करें। अश्लील या हीन भाव उत्पन्न करने वाली रचनाओं को हमने सर्वथा बचाया है।

हिन्दी-साहित्य के आदि काल से लेकर आधुनिक काल तक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

के उन सभी कवियों को हमने इसमें स्थान दिया है जिनका साहित्यक महत्त्व सर्व-सम्मत है। भक्ति काल, रीति काल और वर्तमान काल के सभी विशिष्ट एवं प्रतिनिधि कवि आपको इस 'सञ्चय' में मिलेंगे।

कवियों का सामान्य परिचय लिखने में हमने समालोचनात्मक शैली से उनके कृतित्व का मूल्य निर्धारण किया है। तीन-चार पृष्ठ के परिमित परिचय में इससे अधिक समीचीन एवं उपयुक्त शब्दों में लिखा जाना कदाचित् कठिन ही है। पुस्तक के अन्त में छात्रोपयोगी टिप्पणी भी हैं जिनमें कठिन शब्दार्थ के अतिरिक्त प्रसंग-गर्भ वाले प्रकरणों को भी स्पष्ट किया गया है। आशा है छात्रों को यह संकलन रुचिकर एवं हिन्दी-काव्य के प्रति अनुराग उत्पन्न करने में सहायक होगा।

'मधु-सञ्चय' में जिन कवियों की अमूल्य रचनाओं को हमने चुना है, उनके प्रति हम अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

—सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हिन्दी-काव्य का इतिवृत्त

अपभ्रंश तथा देश-भाषा साहित्य

हिन्दी-काव्य-साहित्य का विकास प्राकृत भाषा की अन्तिम अपभ्रंश अवस्था से ही विद्वानों ने स्वीकार किया है। अपभ्रंश या प्राकृताभास हिन्दी-पद्यों का सबसे पुराना पता तान्त्रिक और योगमार्गी बौद्धों की साम्प्रदायिक रचनाओं में विक्रम की सातवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में लगता है। इस काल की रचनाओं का हिन्दी-साहित्य से साक्षात् सम्बन्ध न होने पर भी क्रमानुगत लोक-भाषा की एक परम्परा अवश्य मिलती है जो देश-भाषा के रूप में हिन्दी के आदि काल में विकसित हुई। बौद्धों की वज्रयान शाखा के सिद्धों की रचनाओं में अपभ्रंश भाषा के रूप दृष्टिगत होते हैं जो देश-भाषा के साथ वर्तमान हिन्दी-साहित्य के बीज अपने भीतर छिपाये हुए हैं। संवत ७६० में 'सरहपा' नामक सिद्ध ने चौपाइयों में रचना करके जिस भाषा और शैली का व्यवहार किया वह हिन्दी-काव्य-परम्परा का आदि स्रोत प्रदर्शित करने में समर्थ है। सं० ६६० में देवसेन नामक एक सुप्रसिद्ध जैन ग्रन्थकार हुए, जिन्होंने दोहा छन्द में एक 'श्रावकाचार' ग्रन्थ निर्मित किया। इस ग्रन्थ की भाषा अपभ्रंश का प्रचलित और सरल रूप लिये हुए है। इस युग में कई जैन कवि उत्पन्न हुए और प्राय: सभी ने चरित्र काव्य या आख्यान-काव्य के लिए दोहा-चौपाई पद्धति को स्वीकार करके अपभ्रंश भाषा में काव्य-रचना प्रस्तुत की। सं० १०२६ में पुष्यदन्त नामक कवि ने 'आदि पुराण' और 'उत्तर पुराण' की रचना इसी दोहा-चौपाई की शैली में की है।

सातवीं शताब्दी से दसवीं शताब्दी तक इन साधु और सिद्धों की परम्परा हमारे देश में अविच्छिन्न रूप से जारी रही। वज्रयान सम्प्र-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दाय के रूप में बौद्ध धर्म विकृत होकर देश के पूर्वी भागों में फैलता रहा और आगे चलकर 'चौरासी सिद्धों' के रूप में तो यह देश-व्यापी हो गया। इन सिद्धों का ध्येय समाज में वामाचार फैलाकर भोली-भाली जनता को अपने आश्चर्यजनक कार्यों से विस्मय-विमुग्ध बनाकर अपने सम्प्रदाय में दीक्षित करना था। इस ध्येय के लिए ये लोग अपनी अटपटी भाषा में रचनाएं करके जनता को सुनाते और उन्हें अपना अनुयायी बनाते थे। इन सिद्धों में गो-रक्षा, कण्डयप नागार्जुन, चर्पटीपा, सरहपा, अनङ्गपा आदि प्रसिद्ध हैं। बाबा गोरखनाथ इसी परम्परा के विख्यात सिद्ध हैं। बाद में इन्होंने अपना मार्ग (नाथ पन्थ) अलग कर लिया था। नाथ पन्थ में हठयोग का प्राधान्य रहा और ईश्वर-प्राप्ति के लिए साधना-निरत इन सिद्धों में वज्रयानी सिद्धों की अपेक्षा अनाचार कम रहा। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने इन सिद्धों की रचनाओं का संकलन प्रस्तुत करके हिन्दी-काव्य-साहित्य की पृष्ठभूमि सातवीं शताब्दी स्थिर करने का प्रयत्न किया है। यदि इन तान्त्रिकों और सिद्धों की वाणी को अपभ्रंश का अन्तिम और हिन्दी का प्रारम्भिक रूप स्वीकार किया जाय तो हिन्दी-साहित्य का उद्गम सातवीं शताब्दी से माना जा सकता है।

सिद्धों और नाथ-पन्थी साधुओं की वाणी इतनी अटपटी और रहस्यमयी होती थी कि उसे पूर्णरूप से हृदयंगम करना जन साधारण के लिए दुष्कर था। ये लोग अपनी वाणी को जान-बूझकर रहस्यपूर्ण और दुर्बोध बनाते थे ताकि सम्प्रदाय के बाहर के जन उसे समझ न सकें। अपनी भाषा को इन्होंने 'सन्ध्याभाषा' नाम दिया है। इन सिद्धों की भाषा का हिन्दी से सम्बन्ध प्रदर्शित करने के लिए कुछ उदाहरण हम यहाँ प्रस्तुत करते हैं, जिन्हें पढ़कर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उनकी भाषा का हिन्दी भाषा से कितना सीधा सम्बन्ध है। सिद्ध लूहिया ने परमात्मा की अनिर्वचनीयता के विषय में लिखा है—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"भाव न होइ, अभाव न होइ। अइस से वो हें को पतिआइ।"

इस उद्धरण में आये हुए क्रिया पद और संज्ञा शब्द आधुनिक हिन्दी के इतने समीप हैं कि हम इस भाषा को हिन्दी का आदि रूप मानें तो आपत्ति नहीं होनी चाहिए। किन्तु इस काल की सिद्ध-कृतियाँ शुद्ध साहित्य के अन्तर्गत नहीं आती। यथार्थ में एक प्रकार से आयुर्वेद, ज्योतिष, तन्त्रशास्त्र आदि के समान ही ये रचनाएं हैं। उन रचयिताओं का प्रयत्न है कि सर्वमान्य देश भाषा में ही अपनी वाणी को जनता तक पहुँचाया जाय।

सिद्धों और बौद्धों के इस काल के बाद अपभ्रंश-साहित्य का दूसरा चरण आता है। इस युग में जैनाचार्यों द्वारा बहुत ही उच्चकोटि का साहित्य-सृजन हुआ। संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश तीनों भाषाओं के प्रकाण्ड पण्डित हेमचन्द्र ने बारहवीं शताब्दी में बड़े ही सरस साहित्य का प्रणयन करके अपभ्रंश भाषा को उसके चरम उत्कर्ष पर पहुँचाया, उनकी 'द्वयाश्रय काव्य' और 'कुमारपाल चरित' आदि कृतियाँ काव्य-सौष्ठव एवं विषय-प्रतिपादन की दृष्टि से उस युग की श्रेष्ठतम कृतियाँ हैं। उनकी भाषा का एक उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है :-

"भल्ला हुआ जु मारिया बहिणि महारा कन्तु।
लज्जेजं तु वयं सिअहु जइ भग्गा घरु एन्तु।"

(भला हुआ जो मारा गया, हमारा कन्त, हे बहिन! यदि वह भागा हुआ घर आता तो मैं अपनी सखियों में लज्जित होती।)

इसी काल में 'सोमप्रभ सूरि' नामक जैन कवि हुए जिन्होंने 'कुमार पाल प्रतिबोध' नामक गद्य पद्यमय संस्कृत प्राकृत काव्य लिखा। इनका रचना काल सं० १२४१ है। जैनाचार्य मेरुतुङ्ग, शाङ्गधर आदि भी इसी काल के अपभ्रंश कवि हैं। शाङ्गधर ने १४ वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में 'हम्मीर रासो' नामक काव्य लिखा। यह काव्य पूर्ण रूप में उपलब्ध नहीं, कुछ पद्य अवश्य उपलब्ध होते हैं, जिनके रचयिता के विषय में असंदिग्ध रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अपभ्रंश काव्य की रचना की यह परम्परा पन्द्रहवीं शताब्दी तक अविच्छिन्न रूप से चली। 'देश-भाषा' के साथ अपभ्रंश को मिलाकर सरस पदावली की रचना करने वालों में विद्यापति ठाकुर का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। विद्यापति ने अपभ्रंश भाषा में 'कीर्ति-लता' और 'कीर्ति-पताका' नामक दो प्रशस्ति-काव्य लिखे। विद्यापति ने अपनी भाषा को 'अवहट्ट' भाषा कहकर सर्वजन-सुलभ और सरस बखान किया है। संक्षेप में, देश-भाषा या अपभ्रंश में काव्य-रचना का क्रम पन्द्रहवीं शती तक प्रचलित रहा और वह साहित्य हिन्दी साहित्य से अपना सम्बन्ध जोड़कर हिन्दी के विकास में सहायक हुआ।

वीर गाथा काल (सं० १०५०–१३७५)

अपभ्रंश-साहित्य के साथ ही जन-साधारण की बोली में गीत, दोहे आदि लिखने की परिपाटी भी इस काल में प्रचलित रही होगी, यह तत्कालीन साहित्य को देखने से विदित होता है। भाट और चारण कवियों की परम्परा में प्रशस्ति-पद्य लिखने का भी प्रचार रहा होगा। प्रारम्भिक काल की जो सामग्री उपलब्ध होती है, वह इस तथ्य का प्रमाण है। उस समय के भाट या चारण कवि अपने आश्रय-दाता राजाओं के बल, पराक्रम, विजय, शत्रु कन्या-हरण आदि का अत्युक्ति-पूर्ण आलाप करने और रण-क्षेत्रों में जाकर वीरों के हृदय में उत्साह की उमंगें भरकर अपनी काव्य-प्रतिभा का परिचय दिया करते थे। अतः इस काल को 'वीर गाथा काल' कहा जाता है। ये वीरगाथाएं दो रूपों में मिलती हैं, प्रबंध काव्य के साहित्यिकरूप में और वीर गीतों के रूप में। साहित्यिक प्रबंध के रूप में उपलब्ध प्राचीनतम काव्य ग्रन्थ 'पृथ्वीराज रासो' है, जिसका रचयिता चन्द बरदाई नामक कवि कहा जाता है। वीर गीत के रूप में प्राप्त प्राचीनतम काव्य 'बीसल देव रासो' है इसका प्रणेता नरपतिनाल्ह कवि है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

'रासो' शब्द का प्रयोग वीर रसात्मक कथा-काव्य के लिए होता था अतः उस युग की सभी पुस्तकों का नाम रासो है। रासो का अर्थ रहस्य, रसायण, रास आदि भी लगाया गया है जो अटकल ही प्रतीत होता है। इस युग में अनेक रासो-ग्रन्थ लिखे गए। रासो परम्परा में 'खुमान रासो' नामक सबसे पहले ग्रन्थ का उल्लेख है। इसका रचयिता कौन था यह अभी तक सन्दिग्ध है। दलपत विजय नामक एक भाट का नाम इस ग्रन्थ के लेखक के रूप में जनश्रुति में चला आ रहा है किन्तु काव्य की विषय-वस्तु के आधार पर असंदिग्ध रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

'पृथ्वीराज रासो' के विषय में भी विद्वानों में बड़ा मतभेद है। इस काव्य में असंगतियों की भरमार हैं। काल, देश, व्यक्ति, घटना, नाम आदि सभी प्रकार की ऐतिहासिक त्रुटियों से परिपूर्ण इस ग्रन्थ को देखकर निर्णय करना कठिन हो जाता है कि यह ग्रन्थ किस सन्-सम्वत् में किस कवि के द्वारा प्रणीत हुआ। इसकी भाषा पर भी कई युगों की छाप है। डिंगल और पिंगल भाषा के नाम से जो दो भाषा में विख्यात हैं उनकी सम्मिलित छाप पृथ्वीराज रासो में दृष्टिगत होती है। चन्द बरदाई का समय सम्वत् १२२५-१२४९ बताया जाता है। रासो के अनुसार वह भट्ट जाति के जगात गोत्र के थे। इनके पूर्वजों की भूमि पंजाब में थी। वहीं लाहौर में इनका जन्म हुआ था। इनको पृथ्वीराज का सखा, सामन्त और सचिव कहा जाता है। रासो ढाई हजार पृष्ठों का विशाल काव्य है, जिसमें ६९ समय (सर्ग) हैं। कहते हैं कि इसको चन्द के पुत्र जल्हन ने पूर्ण किया था। रासो के मुख्य विषय विवाह, युद्ध और आखेट हैं। काव्य में वीर रस का प्रवाह प्रारम्भ से अन्त तक परिलक्षित होता है। भाषा साहित्यिक एवं सरस है।

इस काल में एक केदार मधुकर कवि हुए जिन्होंने राजा जयचन्द की प्रशस्ति में काव्य प्रणयन किया। जगनिक इस युग के लोकप्रिय

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गायक कवि हैं जिनका आल्हा आज भी परम्परा से जीवित है और ग्रामीण जनता का मनोरंजन करने में समर्थ है।

इस काल में वीर रस की रचना न करके स्वतंत्र रूप से कविता करने वाले दो कवि प्रसिद्ध हैं। एक तो हैं मियाँ खुसरो, जो फारसी के अच्छे ज्ञाता और नामी कवि थे। ये स्वभाव से विनोदी, मिलनसार और हास्यप्रिय व्यक्ति थे। खड़ी बोली का जो रूप आज प्रचलित है उसका आभास सबसे पहले आपकी रचनाओं में ही मिलता है। इनके नाम से खड़ी बोली की अनेक पहेलियाँ, मुकरनियाँ आदि प्रचलित हैं। उदाहरण—

'एक थाल मोती से भरा, सब के सिर पर औंधा धरा।
चारों ओर वह थाली फिरे, मोती उसमें एक न गिरे।

विद्यापति इसी काल के दूसरे प्रमुख कवि हैं जिनकी काव्य-रचना का क्षेत्र बहुत व्यापक था आपने चौदह ग्रन्थों की रचना की। 'पदावली' नाम से उपलब्ध आपकी रचना बहुत प्रसिद्ध है और उसकी सरसता को देखकर रीतिकालीन श्रृंगारी कवियों का स्मरण हो आता है। अपभ्रंश काल की रचनाओं में भी इनका उल्लेख कर दिया गया है।

भक्ति काल (सम्वत् १३७५–१७००)

वीर गाथा काल के उपरान्त काव्य-क्षेत्र में सहसा भक्ति की धारा क्यों कैसे प्रवाहित हुई यह एक विचारणीय प्रश्न है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास में इसका कारण तत्कालीन विषम परिस्थितियों को ठहराया है। उनका कहना है कि देश में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर "हिन्दू जनता के हृदय में गौरव, गर्व और उत्साह के लिए अवकाश न रह गया था। अपने पौरुष से हताश हिन्दू जाति के लिए भगवान् की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त और दूसरा मार्ग ही क्या था। नैराश्य, दैन्य,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जड़ता और पराधीनता की भावना ने कालदर्शी भक्त कवियों को एक नवीन दृष्टि से सम्पन्न किया और उनके अन्तः करण में प्रेरणा हुई कि वे अपनी वाणी से जनता के हृदय में भगवान् के प्रति आस्था उत्पन्न करके उन्हें जीवन के प्रति अनुरागपूर्ण बनायें।" इस विचार के साथ ही कुछ विद्वानों का कथन है कि भक्ति की अविच्छिन्न धारा हमारे देश में विद्यमान थी। गुजरात में स्वामी माध्वाचार्य की वैष्णव परम्परा, दक्षिण में स्वामी रामानुजाचार्य की 'राम' उपासना चल रही थी। भक्ति के इस सूत्र को पकड़कर ही भक्तिकालीन कवियों ने अपनी काव्य-साधना प्रारम्भ की। केवल राजनीतिक परिस्थितियों ने ही उन्हें भक्ति-रचना के लिए विवश नहीं किया था।

भक्ति-आन्दोलन की जो लहर दक्षिण से आई उसी ने उत्तर भारत का परिस्थिति के अनुकूल हिन्दू-मुसलमान दोनों के लिए एक सामान्य भक्ति-मार्ग की भावना कुछ भक्त कवियों में उत्पन्न की। ईश्वर की साम्प्रदायिक रूप से उपासना-पद्धतियों का जो प्रचार उस समय था उसमें सामंजस्य उत्पन्न करने और भगवान् को सगुण-पद्धति से हटाकर 'निर्गुण' एवं निराकार सिद्ध करने की भावना से कबीरदास ने भक्ति का 'निर्गुण पंथ' चलाया। इस निर्गुणभक्ति-पद्धति का ढाँचा उन्होंने भारतीय वेदान्त तथा सूफी सम्प्रदाय के प्रेम तत्त्व के सम्मिश्रण से खड़ा किया। उनका यह निर्गुण पंथ चल निकला और उसमें नानक, दादू, मलूकदास आदि उच्च कोटि के सन्त उत्पन्न हुए। इन सन्तो की काव्य-साधना आनुषङ्गिक थी, मुख्य रूप से तो ये सन्त थे और अपनी चिन्ता-धारा में काव्य को नहीं वरन् सहज भक्ति को ही स्थान देते थे। कबीर की निर्गुण-भक्ति की यह धारा आगे चलकर दो रूपों में विभक्त हो गई। पहली ज्ञानाश्रयी शाखा और दूसरी शुद्ध प्रेममार्गी शाखा। प्रेममार्गी शाखा में जायसी आदि सूफी कवियों का स्थान है। ज्ञानाश्रयी शाखा के सन्त कवि अपना प्रभाव शिक्षित जनता पर अधिक नहीं डाल सके। वे लोग आडम्बरों का तिरस्कार करके

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आचरण की शुद्धता पर जोर देकर और धार्मिक सामंजस्य का उपदेश देकर अपने कर्तव्य का निर्वाह करते रहे। प्रेममार्गी कवि यथार्थ में साहित्यिक थे। इन साधक कवियों ने लौकिक प्रेम के बहाने उस प्रेम-तत्त्व का आभास दिया है जो प्रियतम ईश्वर से मिलाने वाला है।

निर्गुण पंथ के कवियों की एक विशेषता है रहस्यवाद। कबीर ने भी रहस्यवाद को अपनी वाणी में पर्याप्त स्थान दिया है, किन्तु उनके रहस्यवाद का बहुत-कुछ आधार उन पारिभाषिक संज्ञाओं के कारण है जो वेदान्त और हठयोग में निर्दिष्ट हैं। किन्तु प्रेममार्गी सूफी कवियों ने जिस रहस्यवाद का आभास अपने काव्यों के बीच-बीच में कराया है वह बहुत ही स्वाभाविक और मर्मस्पर्शी है। कहीं-कहीं उन्होंने हठयोग आदि की रहस्यमयी प्रवृत्तियों का भी अपने काव्य में उल्लेख किया है।

सगुण भक्ति-पद्धति को पल्लवित करने के लिए भी दो शाखाओं का अवलम्बन हुआ। कुछ भक्त कवि विष्णु के अवतार भगवान् रामचन्द्र को अपना इष्टदेव मानकर भक्ति में निरत हुए और कुछ भक्तों ने भगवान् कृष्ण को अपना आराध्य देव स्वीकार किया। इस प्रकार 'राम-भक्ति-शाखा' और 'कृष्ण-भक्ति-शाखा' नाम से दो भक्ति-धाराएं प्रवाहित हुईं। स्वामी रामानुजाचार्य की शिष्य-परम्परा में स्वामी रामानन्द ने उत्तर भारत में राम-भक्ति को बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान दिया। उन्होंने जात-पात की भावना को तिलांजलि देकर सभी वर्ग और जाति के भक्तों को अपनी शिष्य-परम्परा में स्वीकार किया और राम-भक्ति का समस्त भारत में प्रचार किया।

राम-भक्ति-शाखा के सबसे महान् कवि गोस्वामी तुलसीदास हैं। तुलसीदास अप्रतिम मेधा, प्रतिभा और पांडित्य लेकर भक्ति-क्षेत्र में अवतरित हुए थे। वैष्णव भावना का जो दृढ़ रूप इनकी भक्ति में विकसित हुआ वह शीघ्र ही इतना व्यापक और प्रबल हो गया कि उत्तर भारत में तुलसी की रामायण घर-घर पूजी जाने लगी। गोस्वामी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जी ने लोक-संग्रह की भावना को मुख्य रूप से अपने काव्य में पल्लवित किया; जिसका परिणाम यह हुआ कि उनका काव्य उस युग का सर्वश्रेष्ठ काव्य बन गया। राम-भक्ति-शाखा के अन्य कवियों में स्वामी अग्रदास, नाभादास, हृदयराम आदि मुख्य हैं। इस शाखा से सम्बन्ध रखने के कारण आचार्य केशवदास का नाम भी इस प्रकरण में उनकी कलाकृति 'राम चन्द्रिका' के कारण उल्लेखनीय है। केशवदास को रीति काल से विशेष रूप से सम्बन्धित समझा जाता है किन्तु उनका स्थान राम-भक्ति-शाखा में भी है।

कृष्ण-भक्ति शाखा का विकास प्रबंध काव्य लिखने में नहीं हुआ। इस शाखा के कवि मुक्तक रचनाएं करके ही अपने आराध्य की उपासना में लीन रहे। 'सूरदास' इस शाखा के प्रवर्त्तक और सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। अष्टछाप नाम से जो सम्प्रदाय स्थापित हुआ था उसमें नन्ददास, परमानन्ददास, कुम्भनदास, छीत स्वामी आदि प्रसिद्ध हैं। ये भक्त कवि अपने को 'पुष्टिमार्गी' कहते थे। कृष्ण-भक्त कवियों की दूसरी एक और परम्परा है उसमें राधावल्लभ सम्प्रदाय के सैकड़ों कवि हैं। श्री हितहरिवंश ने राधावल्लभ सम्प्रदाय की स्थापना करके शृङ्गारमयी भक्ति-पद्धति को प्रचलित किया। इनकी शिष्य पररुपराएं में ध्रुवदास, चचा वृन्दावनदास, हरिराम व्यास, स्वामी हरिदास आदि हुए निम्बार्क सम्प्रदाय के कवियों में श्री भट्ट, तथा गौड़ीय सम्प्रदाय में गदाधर भट्ट, सुरदास, मदन मोहन आदि प्रसिद्ध हैं। मीराबाई और रसखान भी इसी काल के उच्च कोटि के कलाकार हैं जिनकी रचना-माधुरी से कृष्ण-काव्य स्निग्ध और रसपूर्ण बना हुआ है। निश्चय ही राम-भक्ति-शाखा की अपेक्षा कृष्ण-भक्ति-शाखा में कहीं अधिक रसिक, गायक, मस्त और आनन्दी कवि उत्पन्न हुए। इन्होंने प्रेम-माधुर्य का जो स्रोत बहाया वह हिन्दी-काव्य-साहित्य को सदा सींचता रहेगा।

भक्ति काल के अन्तर्गत कुछ फुटकर कवियों का भी परिगणन होता है जो अपनी विवधि रचनाओं के कारण विख्यात हैं। इन कवियों

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

में रहीम, गंग, नरहरि और बीरबल आदि प्रसिद्ध हैं। कविवर नरोत्तमदास प्रबध-रचना में अ।ना विशिष्ट स्थान रखते हैं; उनका 'सुदामा चरित' सुन्दर कथानक पर आधारित मर्मस्पर्शी काव्य है। कवि सेनापति भी इसी काल में हुए, उनका 'कवित्त-रत्नाकर' प्रकृति-वर्णन की दृष्टि से हिन्दी-काव्य-साहित्य में पर्याप्त प्रसिद्ध है।

रीति काल (संवत् १७००–१९०० तक)

हिन्दी-साहित्य के इतिहास में रीति काल भाषा-लालित्य और अभिव्यंजना की प्रौढ़ता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इस काल के कवियों का लक्ष्य रस, अलंकार, ध्वनि, छन्द आदि शास्त्रीय विषयों का निरूपण करना और नायक-नायिका-भेद लिखकर अपने आश्रयदाता राजा और नवाबों को परितुष्ट करना था। भक्ति-विषयक रचनाओं से हटकर शृङ्गारपूर्ण काव्य-रचना की ओर कवियों का ध्यान सहसा कैसे गया यह प्रश्न विचारणीय है। राजनीतिक दृष्टि से इस काल में मुसलमानों का अखण्ड साम्राज्य भारत में स्थापित हो चुका था और राजा-महाराजाओं के दरबारों में हिन्दू-मुसलमान समान भाव से आते जाते थे। हिन्दू कवियों का ध्यान इस युग के दरबारों का आश्रय पाकर विलास-प्रवण राजाओं को नायिका-भेद की भूमिका में शृङ्गार के सरस चित्र प्रस्तुत करने में लगा हुआ था। 'महेश' से हटकर कवि का ध्यान 'नरेश' पर आ टिका था। परलोक की साधना से दूर हटकर कवि इहलोक की साधना में निरत था। भक्तिकालीन कवियों ने भाव की प्रौढ़ता देकर हिन्दी-काव्य को इतना उदात्त और आदर्श बना दिया था कि उसमें किसी भी दृष्टि से प्रौढ़ता का अभाव न था। भक्ति-युग में भी कृपाराम और केशवदास ने रीति-पद्धति को अपनाकर रस और अलंकार निरूपण किया था। करनेस कवि ने भी अलंकार सम्बन्धी ग्रन्थ लिखे थे। अतः शास्त्रीय विषयों की भरमार होना इस युग में कुछ स्वाभाविक हो गया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हिन्दी में रीति-ग्रन्थों की अखण्ड परम्परा चिन्तामणि त्रिपाठी से चली। उन्होंने सं० १७०० के आस-पास तीन काव्य-ग्रन्थ लिखे। इनके बाद महाराज जसवन्तसिंह, बेनी, बिहारीलाल, देव, मतिराम, भूषण, घनानन्द, पद्माकर आदि अनेक सुप्रसिद्ध कवि इस काल में उत्पन्न हुए। नायक-नायिका-भेद के अतिरिक्त कुछ कवियों ने आचार्य की कोटि में आकर काव्यांगों का विशद निरूपण किया। भिखारीदास और जसवन्तसिंह इस कोटि के आचार्य कहे जा सकते हैं। इतना होने पर भी साहित्य-शास्त्र पर गम्भीर और विस्तृत विवेचन तथा नूतन विषयों की उद्भावना इस काल में पूर्ण रूप से नहीं हो सकी है। घनानन्द-जैसे कवियों ने ध्वनि तथा व्यंजना आदि शब्द-शक्तियों पर अच्छा प्रकाश डाला। इस काल के कवि अपनी रीति-कविता को संस्कृत-साहित्य-पद्धति पर ही केन्द्रित करके लिखते थे, अतः वे अलंकार और रस के सिवा किसी और 'वाद' या सम्प्रदाय पर विस्तार से नहीं लिख सके। संस्कृत-कवियों-जैसा अगाध पांडित्य और विवेचन भी इनमें न था, अतः इनकी काव्य रचनाओं में वैसी गम्भीरता और व्यापकता नहीं आ सकी। संस्कृत-साहित्य के समान अलंकारवाद, रीतिवाद, रसवाद, ध्वनिवाद, वक्रोक्तिवाद इत्यादि सूक्ष्म विश्लेषणपरक वादों के मनन और चिन्तन का मार्ग नहीं निकल पाया।

फिर भी, इतना अवश्य कहना होगा कि रीतिकालीन कवि भावुक, सहृदय और निपुण कवि थे। कविता करना उनका ध्येय था—काव्याङ्गों का शास्त्रीय विवेचन वे गौण रूप से जहाँ-तहाँ करते जाते थे। अलंकारों और नवरसों के बड़े ही हृदयग्राही और सरस उदाहरण इन कवियों द्वारा प्रस्तुत किये गए। नायिका-भेद का तो इन कवियों ने बड़ा ही विशद, व्यापक और मनोरम वर्णन किया। शृङ्गार रस की इतनी सरस मुक्तक रचना हिन्दी में पहले नहीं हुई थी। शृङ्गार रस की दृष्टि से यह काल अपने चरम उत्कर्ष पर था। इन कवियों ने अपनी काव्य-परिधि को इतना सीमित बना लिया था कि इससे साहित्य के विस्तृत

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विकास में बाधा पहुँची। जीवन की विभिन्न परिस्थितियों, जगत् के नाना-रहस्यों और प्रकृति की अनेकरूपता की ओर रीतिकालीन कवियों की दृष्टि नहीं गई। एक ही प्रकार की अभिव्यंजना और एक-से विषय को स्वीकार करने के कारण काव्य में व्यक्तिगत विशेषता की अभिव्यक्ति का अवकाश बहुत कम हो गया। कुछ कवियों के काव्य तो विषय, शैली, भाषा, छन्द आदि में इतना साम्य रखते हैं कि उन्हें पृथक् करके देखना भी कठिन है। यह मौलिकता की दृष्टि से बड़ा घातक होता है।

भाषा में लालित्य और सौन्दर्य इस काल के कवियों द्वारा अवश्य आया, किन्तु प्रांजलता और परिष्कार के चरम विन्दु को ये कवि न छू पाए। कुछ कवियों ने तो शब्दों को तोड़ने-मरोड़ने में शब्द की सहज प्रकृति पर भी ध्यान नहीं दिया। बिहारी और देव-सदृश-प्रतिभा सम्पन्न कवि विरह-वर्णन की ऊहात्मक पद्धति से कल्पना की उड़ान भरने में अद्वितीय रहे; किन्तु भाषा को सँवारने की ओर इनका भी पूरा ध्यान नहीं रहा। इस काल में कवित्त, सवैया और दोहा छन्दों का ही विशेष प्रचार रहा। यह युग शृङ्गार का था अतः इन कोमल छन्दों का आश्रय ग्रहण करना स्वाभाविक ही था। इस काल को रस की दृष्टि से शृङ्गार काल ही कहा जाना चाहिए। भूषण,सूदन और लाल कवि के अतिरिक्त सभी शृङ्गार-वर्णन में लीन रहे। शृङ्गार-वर्णन को बहुतेरे कवियों ने तो अश्लीलता की सीमा तक पहुँचा दिया। राधा-कृष्ण के कल्पित नामों का आश्रय लेकर इस काल के कवियों ने जो भाव-व्यंजना की वह विलास-प्रवण मनोवृत्ति के लिए ही अधिक उपयुक्त थी। इसका कारण भी उन कवियों के आश्रय दाता ही थे। फिर भी काव्य के उपकरण रस, रीति, अलंकार, छन्द आदि की हिन्दी-काव्य में जो प्रतिष्ठा रीतिकालीन कवियों द्वारा हुई वह निश्चय ही हिन्दी-काव्य-सौन्दर्य की विधायक है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आधुनिक काल (१६६०-१६०६ तक)

हिन्दी साहित्य के इतिहास में आधुनिक काल 'गद्य काल' के नाम से प्रसिद्ध है। यद्यपि पद्य लिखने की प्रवृत्ति इस युग में भी थी और पद्यात्मक रचनाएं गद्य से न्यून मात्रा में न थीं किन्तु गद्य का प्रचार और प्रसार होने से उसकी परिधि, पद्य की अपेक्षा व्यापक हो गई। रीति एवं भक्ति काल की परम्पराओं को स्वीकार करके उस युग में भी अनेक कवियों ने पद्य-रचना की थी। सेवक, महाराज रघुनाथसिंह, रामसनेही, लछिराम, राजा लछमणसिंह और नवनीत चौबे आदि उसी पुरातन रीतिकालीन परम्परा के कवि हैं। इन्हीं कवियों में भारतेन्दु बाबू के पिता गिरधरदास भी आते हैं। इन कवियों की कविता में काल-भेद के अतिरिक्त कोई ऐसा विशेष भेद परिलक्षित नहीं होता जो उसे रीति काल से पृथक् करके स्वतन्त्र व्यक्तित्व प्रदान कर सके।

भारतेन्दुजी ने गद्य के क्षेत्र में नवीनता और व्यापकता लाने के साथ गद्य में परिष्कार और नूतन भावनाओं का संचार करना प्रारम्भ किया। सबसे पहले उन्होंने काव्य-भाषा के परिष्कार के लिए अपने कवित्त और सवैयों से उन शब्दों का बहिष्कार किया जो पुरातन होने के साथ अपने अभीष्ट अर्थ का सम्पर्क त्याग चुके थे। काव्य-विषय को नवीन भावनाओं से परिपूर्ण करने के लिए आपने कवि समाज स्थापित किये और समस्या-पूर्ति के द्वारा कवियों को प्रेरणा देने की सुन्दर योजना रखी। भारतेन्दु की कविता में गद्य की भाँति नूतनता का समावेश न होने पर भी उन्होंने रीतिकालीन काव्य-परम्परा को विषय और भाषा की दृष्टि से कुछ नूतनता अवश्य प्रदान की। स्वदेश, स्वभाषा, स्वधर्म और स्वसंस्कृति का गौरव-वर्णन करने के लिए सबसे पहले इस युग में कविता को माध्यम बनाया गया। राष्ट्रीयता की प्रसुप्त भावनाएं भारन्तेदु की वाणी से प्रसरित हो उस युग के समसामयिक लेखकों और कवियों की टेक बनकर गूंजने लगा। श्री पण्डित अम्बिकादत्त व्यास, प्रतापनारायण मिश्र,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रेमधन, जगमोहनसिंह आदि कवियों ने भारतेन्दु को काव्य-रचना में पूरा सहयोग दिया और हिन्दी-कविता को उर्दू शायरी के समान आकर्षक बनाने में इस काल के कविगण बहुत अंश में सफल हुए।

इस परम्परा के बाद ब्रज भाषा में कविता करने वाले और भी अनेक कवि हुए। यदि इस धारा को पुरानी धारा मानकर वर्गीकरण किया जाय तो लाला सीताराम बी० ए०, अयोध्या सिंह उपाध्याय, श्रीधर पाठक, जगन्नाथदास 'रत्नाकर', राय देवी-प्रसाद 'पूर्ण', वियोगी हरि, दुलारेलाल भार्गव, रामनाथ ज्योतिषी आदि को रखा जा सकता है। काल-क्रम से ये लोग बाद में आते हैं किन्तु इनकी रचना-पद्धति ब्रज भाषा के अनुकूल होने से उन्हें इस श्रेणी में गिना जाता है।

आधुनिक युग की नवीन धारा में उन कवियों की रचनाएं आती हैं जिन्होंने विषय-वस्तु के साथ प्रक्रिया में भी नूतनता का संचार किया। भारतेन्दु बाबू को ही हम इस धारा का प्रवर्तक मान सकते हैं। भारतेन्दु की वाणी का सबसे ऊँचा स्वर देश-भक्ति का था। नवीन विषयों के विधान के कारण उनके साथियों ने भी इस ओर ध्यान दिया। इस काल के कवियों को आचार्य शुक्ल ने 'नर प्रकृति' का कवि कहा है, क्योंकि बाह्य प्रकृति की अनेकरूपता के साथ उनके हृदय का सामंजस्य नहीं हो पाया था। इस नवीन धारा का यथार्थ रूप में उदय पं० श्रीधर पाठक की कविता से समझना चाहिए। पाठक जी ने 'एकान्तवासी योगी' में सीधी-सादी शैली में जिस मार्मिक भाव को अभिव्यंजित किया वह आगे आने वाले 'स्वच्छन्दता वाद' का सूचक कहा जा सकता है। अंगरेजी कविता में जिस प्रकार 'काउपर' 'बर्न्स' 'स्काट' आदि ने 'रोमाण्टिसिज्म' का आधार पाकर सरस भावाभिव्यक्ति की, हिन्दी में भी वैसी ही भाव-धारा का सूत्रपात इस युग में हुआ। छन्दों में विविधता, भावों में अनेक-रूपता, अभिव्यक्ति में स्वच्छन्दता, प्रकृति के ति ममत्व तथा विषय-वस्तु

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

में दिव्यता को स्थान देने के कारण श्रीधर पाठक ही हिन्दी में सच्चे 'स्वच्छन्दतावाद' के प्रवर्त्तक ठहरते हैं। खेद है कि इस स्वाभाविक स्वच्छन्दता का मार्ग हिन्दी-काव्य-क्षेत्र में लम्बे समय तक चल न पाया। श्री महावीरप्रसाद द्विवेदी के आगमन से संस्कृत छन्दों के साथ संस्कृत पदावली का प्रचार हुआ और विषयों की नवीनता को अतीत-कथाओं ने इस प्रकार आवृत कर लिया कि उसे हिन्दी के समालोचक 'इतवृत्तात्मक कविता' के नाम से व्यवहृत करते हैं।

द्विवेदी युग के कवियों में श्री मैथिलीशरण गुप्त तथा अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। गुप्तजी ने 'भारत भारती' से काव्य-रचना आरम्भ करके आज तक अनेक रूप में अपना साहित्य प्रस्तुत किया है। गुप्तजी की प्रतिभा की सबसे बड़ी विशेषता कालानुसरण की क्षमता और उत्तरोत्तर परिवर्तित होती हुई भावनाओं और काव्य-प्रणालियों को ग्रहण करने में है। इस दृष्टि से उन्हें आज हम 'प्रतिनिधि कवि' के नाम से पुकार सकते हैं। उपाध्याय जी ने अपनी काव्य-प्रतिभा का परिचय 'प्रिय प्रवास' और 'वैदेही वनवास' में दिया है। राम और कृष्ण की पुरातन गाथाओं को नवीन शैली से प्रस्तुत करने का यह प्रयास इतना सफल हुआ कि बाद में और कवियों का ध्यान भी इस ओर गया। पं० रामचरित उपाध्याय, नाथूराम शंकर शर्मा, सनेही, रूपनारायण पांडेय, दीन, सियारामशरण गुप्त आदि कवियों ने खड़ी बोली को अभिव्यक्ति का सरस माध्यम बनाकर इस काल में उत्तम कोटि का काव्य-प्रणयन किया।

द्विवेदी युग की छाप बाद में भी कुछ कवियों पर दृष्टिगत होती है। ठाकुर गोपालशरणसिंह, अनूप शर्मा, हितैषी, श्यामनारायण पांडेय, पुरोहित प्रतापनारायण आदि इसी कोटि में आते हैं।

द्वितीय उत्थान के समाप्त होने पर खड़ी बोली में कविता का परिमाण पर्याप्त हो चुका था। साथ ही अभिव्यक्ति की क्षमता भी पूर्ण रूप

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

से भाषा में आ गई थी। छन्दों में परिवर्तन, लय, गति, यति आदि की स्वच्छन्द योजना तथा वस्तु-विधान और अभिव्यंजन शैली में नूतन प्रवृत्तियों का समावेश इस युग में हुआ। राष्ट्र-प्रेम का जो स्वर भारतेन्दु युग में सुनाई पड़ा था वह भी इस युग में नूतन ध्वनि के साथ गुञ्जित हुआ। साम्राज्यवाद और सामन्तशाही के विरुद्ध आवाज उठाने वाले अनेक आन्दोलन काव्य-क्षेत्र में सुनाई दिए। इसके साथ ही द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता से निष्कृति पाने के लिए कवियों ने एक साथ नवीन भावनाओं, विचारों, कल्पनाओं और अनुभूतियों को काव्य में स्थान देना प्रारम्भ किया। कविता में पद-लालित्य, कल्पना की उड़ान, भाव की वेगवती व्यंजना, वेदना की विवृति, प्रतीक प्रयोग की विलक्षणता उत्पन्न करने की बलवती इच्छा कवियों में अंकुरित हुई और उसके फल स्वरूप काव्य की समस्त पुरातन प्रक्रिया और विषय-वस्तु परिवर्तित हो गई। इस काल की प्रारम्भिक कविताओं में एक प्रकार की अव्यक्त रहस्य-भावना अन्तर्निहित रहती थी। गुप्त, प्रसाद और मुकुटधर पांडेय को इस प्रवृत्ति का मूल प्रेरक कहा जा सकता है।

इस युग में ही 'छायावाद' नाम से एक स्वतंत्र वाद हिन्दी-कविता में आया। आचार्य शुक्ल ने 'छायावाद' शब्द का दो अर्थों में प्रयोग स्वीकार किया है। एक तो 'रहस्यवाद' के अर्थ में जहाँ उसका सम्बन्ध काव्य वस्तु से होता है और दूसरा प्रयोग काव्य शैली या पद्धति-विशेष के व्यापक अर्थ में। प्रतीकवादी कवियों को छायावादी कवि का नाम देकर छायावाद की सीमा-मर्यादाएं निर्धारित हुईं। यथार्थ में छायावाद का यह अर्थ बहुत सीमित और अपूर्ण है। इसी अर्थ के आधार पर शुक्ल जी ने अपने इतिहास में लिखा है कि 'प्रस्तुत के स्थान पर उसकी व्यंजना करने वाली छाया के रूप में अप्रस्तुत का कथन' छायावाद कहलाता है। अतः अन्योक्ति-पद्धति भी छायावाद का एक विशेष लक्षण हुआ। किन्तु इतना कह देने से छायावाद की परिपूर्ण व्याख्या नहीं होती। छायावादी कवियों में रहस्यात्मकता का होना स्वाभाविक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है, इस दृष्टि से श्रीमती महादेवी वर्मा और श्री जयशंकर 'प्रसाद' का स्थान बहुत ऊँचा है। स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह स्थूल भावनाओं को वायवी रूप देकर छायावाद की शैली से सँजोने वाले कवियों में श्री सुमित्रानन्दन 'पन्त' तथा श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। छायावाद यथार्थ में एक प्रक्रिया-विशेष ही न होकर विषय या भाव की दृष्टि से भी नूतन सरणि का अनुगमन करने वाला काव्य-पथ है, जिसने हिन्दी-साहित्य की सम्पत्ति को कई गुना बढ़ाया है। रहस्यवाद की भावना को अस्पष्ट रूप से व्यंजित करने वाले कवियों में श्री माखनलाल चतुर्वेदी 'एक भारतीय आत्मा' हैं। राष्ट्र-प्रेम के आधार पर सूक्ष्माभिव्यक्तिपरक कविता लिखने में श्री रामधारीसिंह 'दिनकर' और श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का नाम भी स्मरणीय है। श्रीरामकुमार वर्मा ने भी कुछ कविताएं रहस्यमयी छाया में अंकित की हैं। संक्षेप में, छायावाद को स्वीकार करके श्री जयशंकर प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी, रामकुमार वर्मा आदि कवियों ने उच्च कोटि का काव्य-सृजन किया।

छायावाद की इस काव्य-धारा में जगत् के स्थूल विषयों की उपेक्षा इस कोटि तक पहुँच गई कि कुछ आलोचकों को इस 'वाद' में जीवन के यथार्थ संघर्ष से पलायन दृष्टिगोचर होने लगा। दूसरी ओर जीवन की भौतिक एवं यथार्थ समस्याओं ने एक बार फिर कवि के मानस को मथकर संसार के प्रति उन्मुख किया और छायावादी कवियों की कोमल कान्त, प्रतीक-पद्धति से विलग बहुत-से होकर कवियों ने जीवन, जागृति, बल और बलिदान की भावना को काव्य का मेरुदंड बनाया। इस कोटि के कवि 'प्रगतिवादी' कहलाए। आश्चर्य यह है कि प्रगति की यह प्रेरणा हिन्दी में राजनीतिक आन्दोलन के प्रभाव से आई, किन्तु उसे साहित्यिक रूप दिया कविवर पन्त ने ही। पन्त ने युगवाणी 'युगान्त, ग्राम्या आदि रचनाओं में प्रगतिवाद के स्वर को इतनी संयमित वाणी में प्रतिध्वनित किया कि छायावाद का सर्वश्रेष्ठ कवि ही प्रगतिवाद का

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

साहित्यिक उन्नायक बना। छायावाद कवि-समाज का अंग न रहकर अपने ही व्यक्तित्व की सीमाओं में समाकर रह गया था। उसकी कविता व्यष्टिपरक थी—समष्टि की उपेक्षा उसका स्वभाव था। किन्तु प्रगतिवाद के आते ही कवि पुनः समाज की एक इकाई बनकर आया। उसने अपने जीवन-दर्शन को परिवर्तित करने के साथ-साथ कला का मापदंड भी परिवर्तित किया। कोयल की कुहू के स्थान पर उसने मिल के भोपूँ और खेत-खलिहान के पीड़ाभरे हाहाकार और क्रन्दन सुनना पसन्द किया। प्रगतिवादी कवि स्वर्गीय कमनीय कल्पना से नीचे उतरकर लोहे-मिट्टी—पदार्थ की वास्तविकता को समझना चाहता है। बुर्जुआ अर्थात् सामन्तशाही वाणी का परित्याग करके जन साधारण की राज्य-स्थापना को प्रगतिवादी कवि ने आपकी कविता की पुकार माना। यह पुरःगामी वाङ्मय या प्रोग्रेसिव लिटरेचर हिन्दी में छायावादी कविता के प्रति विद्रोह लेकर आया था। इस 'वाद' में एक जागरण था, अतः इसका जादू सब पर चल गया। इस वाद का मूल आधार मार्क्स का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद 'डाइलेक्टिकल मैटेरियलिज्म' था। मार्क्सवाद की मूल प्रेरणा पर आधारित यह वाद रोटी, कपड़ा, अर्थात् आर्थिक समस्याओं के समाधान का ही राग अलापता है। धर्म, ईश्वर तथा आध्यात्मिकता में इसकी आस्था नहीं। इसलिए इस साहित्य का बहिर्मुखी होना स्वाभाविक है। ऐहिकता की प्रधानता के कारण इस साहित्य में रूक्षता और शुष्कता है, भावुक व्यक्ति को यह द्रवित नहीं करता। वर्ग-संघर्ष में विश्वास रखने के कारण अर्थ-मूलक समस्याओं का ही इस वाद में स्थान है। कहीं-कहीं काम-मूलक समस्याओं का भी चित्रण है, किन्तु उसका समाधान अर्थ के वैषम्य को दूर करने में ही निहित है। नरेन्द्र शर्मा, शिवमंगलसिंह 'सुमन', केदारनाथ अग्रवाल, अज्ञेय, अंचल, भारतभूषण अग्रवाल, मुक्तिबोध, माथुर आदि कवियों ने प्रगतिवादी साहित्य का सृजन किया।

इस युग में प्रगतिवादी कैम्प में पारस्परिक संघर्ष से बड़ा मत-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भेद पैदा हुआ है और 'प्रयोगवाद' के नाम से एक स्वतंत्र वाद उठ खड़ा हुआ है। प्रगतिवादी कवियों में कुछ कला और शिल्प के प्रति जागरूक हैं और कुछ साम्यवाद के प्रभाव को ही व्यंजित करने में अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझते हैं। प्रयोगवादी कवि शैली और वस्तु दोनों में ही चिर-प्रयोगशीलता को प्राथमिकता देता है। यद्यपि यह छायावादी कविता के विरुद्ध प्रतिक्रिया-मात्र है। श्री नागार्जुन, रामविलास शर्मा, केदारनाथ अग्रवाल, माचवे आदि कवि अपने दृष्टि-कोण को अधिक-से-अधिक वस्तुगत बनाने में लीन हैं। यही प्रयोगवादी कविता है।

श्री हरिवंशराय 'बच्चन' ने अनुभूतिपरक सुन्दर गीत लिखकर हिन्दी-कविता में एक नूतन भाव-दिशा का प्रवर्त्तन किया। इस युग के कवियों में श्री उदयशंकर भट्ट, नेपाली, आरसीप्रसादसिंह आदि भी उल्लेखनीय हैं। संक्षेप में हिन्दी-कविता का भविष्य नूतन प्रयोगों के घटाटोप में छिपा नहीं है। पद्मावत, रामचरित मानस, सूर सागर, बिहारी सतसई, प्रिय प्रवास, साकेत, कामायनी, पल्लव, उत्तरा, यामा, दीपशिखा, कुरुक्षेत्र आदि काव्यों के साथ हिन्दी-कविता अपना पथ प्रशस्त करती हुई निरन्तर आगे बढ़ती चली जा रही है। प्रबन्ध काव्य, मुक्तक, गीत, प्रगीत, अतुकान्त आदि सभी नवीन और प्राचीन प्रयोग हिन्दी-काव्य की अभिवृद्धि कर रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विषय-सूची

१.	कबीर	...	...	१–११
२.	मलिक मुहम्मद जायसी	...	...	१२–२१
३.	सूरदास	...	...	२२–३३
४.	गोस्वामी तुलसीदास	...	...	३४–५१
५.	मीराबाई	...	...	५२–६०
६.	केशवदास	...	...	६१–७१
७.	बिहारी	...	...	७२–७६
८.	भूषण	...	...	८०–८७
९.	देव	...	...	८८-९४
१०.	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	...	...	१०२–१०१
११.	हरिऔध	...	...	९५–११०
१२.	जगन्नाथदास 'रत्नाकर'	...	...	१११–१२१
१३.	मैथिलीशरण गुप्त	...	...	१२२–१३५
१४.	जयशंकर 'प्रसाद'	...	...	१३६–१४९
१५.	सुमित्रानन्दन पन्त	...	...	१५०–१६५
१६.	सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'	...	...	१६६–१७६
१७.	महादेवी वर्मा	....	...	१७१–१८७
१८.	कविवर रामधारी सिंह 'दिनकर'		...	१८८–२००
	टिप्पणियाँ	...	...	२०१–२१.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

१

कबीर

मध्ययुग के चिंतकों, साधकों, सुधारकों और संत कवियों में कबीर का एक विशिष्ट स्थान है। जिस समय भारत के मुसलमान-शासकों की असहिष्णुता और निरंकुशता, हिंदू जाति का राजनीतिक-असंतोष तथा हिंदू-मुसलमानों का पारस्परिक वैमनस्य अपनी चरम सीमा पर था, भारतीय इतिहास की उसी अव्यवस्थित स्थिति में महात्मा कबीर का जन्म हुआ। कबीर का व्यक्तित्व एक अलौकिक प्रतिभा से सम्पन्न था; एक अखण्ड और अटूट आत्मविश्वास लेकर उनका आविर्भाव हुआ था। बाह्याडम्बरों और जाति-कुल-वर्णगत ऊँच-नीच की भावना को वह बराबर चुनौती देते रहे और उसके विरुद्ध वे जीवन भर संघर्ष करते रहे। हिंदी काव्य-साहित्य की एक धारा-विशेष के प्रवर्त्तक और प्रतिनिधि तो कबीर थे ही; साथ ही वे युग की एक विशेष साधना-पद्धति और साम्प्रदायिक समन्वय के भी प्रतीक थे।

कबीर के जन्म के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। कबीरपंथी साहित्य के आधार पर उनकी जन्मतिथि संवत १४५५ विक्रमी जेठ सुदी पूर्णिमा आँकी गई है। यद्यपि यह ऐतिहासिक प्रमाणों से परिपुष्ट नहीं तथापि अधिकांश विद्वानों ने बहुत तर्क-वितर्क के बाद यही जन्मतिथि स्वीकार कर ली है। कबीर ने कम से कम ९६ वर्ष की आयु पाई क्योंकि जान ब्रिग्स के अनुसार सन् १४९४ में सिकंदर की काशी-यात्रा के समय कबीर का उससे साक्षात्कार हुआ था। इस तरह वह सन् १४९४ अर्थात् संवत् १५५१ वि० तक तो अवश्य ही जीवित रहे। जनश्रुति के अनुसार उन्होंने १२० वर्ष की आयु पाई थी। उनकी स्त्री का नाम लोई बताया जाता है और

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उनके कमाल-कमाली नाम की दो सन्तानें थीं।

कबीर के ग्रन्थों के सम्बन्ध में भी हम निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कह सकते। नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज-रिपोर्टों के अनुसार उनके ग्रन्थों की संख्या ६१ है। लेकिन कबीर ने स्वयं 'मसि कागद' कभी छुआ भी न था। अतः स्पष्ट है कि उन्हें लिपिबद्ध करने का कार्य उनके शिष्यों द्वारा ही सम्पन्न किया गया होगा। सम्भवतः यह कार्य कबीर के निधन के पश्चात् हुआ—इसीलिए कबीर का शुद्ध पाठ ज्ञात नहीं, और न कभी हो सकेगा।

कबीर ने एक महान् संदेश देने के लिए काव्य का सहारा लिया था। काव्य उनके लिए साधन था। इसलिए हमें उनकी—और उनकी ही क्यों किसी भी निर्गुणवादी कवि की रचनाओं में—काव्य-सौन्दर्य की खोज नहीं करनी चाहिए। इसका तात्पर्य यह नहीं कि उनमें काव्य-सौन्दर्य का सर्वथा अभाव है बल्कि केवल यही है कि उनमें भाव का, सिद्धान्त का प्राधान्य है और हमें उसी का मूल्यांकन करना चाहिए। अलंकार, गुण, रस आदि का न तो कबीर को कोई विशेष ज्ञान रहा होगा और न उनकी रचनाएँ इन्हें ध्यान में रखकर लिखीं गई हैं। कबीर की रचनाओं में सर्वत्र उनका विचार-स्वातंत्र्य झलकता है। वह अपने ही ढंग से सोचते हैं और उसे अपने विशेष ढंग से ही व्यक्त करते हैं—निष्कपट और निडर होकर। कबीर के हर शब्द पर कबीर की अपनी छाप है। अपनी मौलिकता के कारण ही सगुणोपासक रामानंद से दीक्षित होकर भी उन्होंने 'निर्गुणोपासना' को अपनाया। लेकिन उन्होंने स्वामी रामानंद के सिखाए हुए मूलमंत्र भक्ति को कभी नहीं छोड़ा। भक्ति-भावना उनमें कूट-कूटकर भरी हुई थी। यही कारण है कि उनकी विचारधारा वेदांती अद्वैतवाद से बहुत भिन्न न होने पर भी उसमें सर्वत्र भक्ति-तत्त्व की सरसता पाई जाती है। कबीर ने शुष्क ज्ञान को अनुभूति का बल दिया। भक्त कबीर ने अपने प्रियतम के आगे पूर्ण आत्मसमर्पण कर दिया। कबीर की भक्तिमयी साधना

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ने निर्वैयक्तिक ब्रह्म को व्यक्तिगत 'राम' बना लिया। कबीर की विरहिणी आत्मा से जो विचार उद्भूत हुए अनुभूति तत्त्व की प्रधानता के कारण उनमें एक सहज सौन्दर्य झलकता है:—'पंथु निहारे कामिनी लोचन भरि रे उसासा उड़हुन कागा कारे, वेगि मिली जै अपुने राम पियारे।' कबीर के पदों में पद-विन्यास की कारीगरी चाहे न हो, पर वे सीधे हमारे प्राणों को स्पर्श करते हैं। कबीर पूर्ण तादात्म्य की उस स्थिति में पहुँच चुके हैं, जहाँ यह कहना कठिन है कि—'सुनुसखि-पिअमहिं जिउबसै, जिय महि बसै कि पीउ।' ब्रह्म और जीव के महा-मिलन में भी जीव अपना अस्तित्व सर्वथा खो नहीं देता।

कबीर साम्प्रदायिक और धार्मिक संकीर्णता के घोर शत्रु थे। वाह्याडम्बर-प्रेमियों, जाति-धर्म गत विभेदों और अन्धविश्वासों के पोषक कर्मकाण्डियों और धर्म के ठेकेदारों पर उन्होंने अपने अचूक व्यंग्यबाणों से भरपूर चोट की है। धार्मिक सुधारक कबीर से पहले भी हुए थे लेकिन सत्य को इतने स्पष्ट शब्दों में कहने का साहस शायद उनमें नहीं था। यह स्पष्टवादिता कबीर की बिलकुल अपनी चीज़ है—जो उनके अखण्ड-अटूट आत्मविश्वास से पैदा हुई थी। अपने व्यंग्याघातों से विपक्षी को धराशायी कर, फक्कड़-अलमस्त कबीर बिना उसकी ओर देखे आगे बढ़ जाते हैं—प्रत्युत्तर का उनके पास न तो समय है और न उन्हें उसकी अपेक्षा है। 'कह हिंदू मोहि राम पियारा, तुरुक कहै रहिमाना...।' 'कोउ हिंदू कोउ तुरुक कहावै एक ज़मीं पर रहिए' 'को बाम्हन को शूद्रा' आदि वाक्यों का उद्देश्य भारतीय-समाज में बन्धुत्व-भावना उत्पन्न करना है और ये कबीर की समदृष्टि के परि-चायक हैं। साम्प्रदायिक एकता के ये ही भाव आज भारत की राष्ट्रीय-राजनीति-चक्र की धुरी बने हुए हैं।

कबीरदास जी बनारस के निवासी थे लेकिन उन्होंने दूर-दूर तक पर्यटन किया था। उनका समाज फकीरों का समाज था जो अपने घरबार को तिलाञ्जलि दे चुके थे। 'हम घर जारा आपना, लिया मुराड़ा-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हाथ, जो घर जारै आपना सो चलै हमारे साथ।' इस पर्यटनशील प्रवृत्ति के फलस्वरूप उनके काव्य में विभिन्न भाषाओं का पुट पाया जाता है, जिसमें पंजाबीपन की मात्रा काफ़ी है। उनकी भाषा प्राञ्जल और सुसंस्कृत भाषा नहीं है क्योंकि वह अशिक्षित थे और उन्होंने जो कुछ भी ज्ञानार्जन किया था, सत्संग के फलस्वरूप। दूसरे उन्होंने भाषा की प्राञ्जलता की ओर कभी ध्यान भी नहीं दिया क्योंकि वह तो भाव का परिधानमात्र है, और एक गौण वस्तु है। जब कबीर अपने प्रियतम के विरह और मिलन के गीत गाते हैं तो उनकी भाषा में लचक और मिठास रहती है लेकिन जब वे अपने प्रतिद्वन्द्वियों के प्रति सचेत होकर अपने धार्मिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन और उनकी संकीर्ण मनोवृत्तियों की आलोचना करते हैं तो उनकी भाषा में भावानुरूप अक्खड़ता और कठोरता आ जाती है।

समाजवादी और सार्वभौमिक विचारधारा के आधुनिक युग में हम चाहे कुछ भी कहें, लेकिन उस युग में विभिन्न वर्गों और सम्प्रदायों के विरोधी तत्त्वों की आलोचना करके मानवता की सामान्य भूमि की ओर इंगित करना कबीर की प्रगतिशील और क्रान्तिकारी प्रवृत्तियों का यथेष्ट प्रमाण है। कबीर ने एक ओर तो साम्प्रदायिक एकता का नारा लगाया और दूसरी ओर सगुण-भक्ति के लिए मार्ग प्रशस्त किया। हिंदी-साहित्य के इतिहास पर दृष्टिपात करें तो हमें कबीर-सा सबल, सुदृढ़ और तेजस्वी व्यक्तित्व गोस्वामी तुलसीदास जी को छोड़ और कोई नहीं मिलेगा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कबीर

साखी

गुरु गोबिंद दोनूं खड़े, का के लागूं पाइ।
बलिहारी गुरु आप ने, गोबिंद दियो बताइ॥
चौंसठि दीवा जोइ करि, चौदह चंदा माहिं।
तिहिं घर किसको चानिणो, जिहिं घर गोबिंद नाहिं॥
लाली मेरे लाल की, जित देखूं तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल॥
आँखड़ियाँ झांई पड़ी, पंथ निहारि निहारि।
जीभड़ियाँ छाला पड़्या, राम पुकारि पुकारि॥
इस तन का दीवा करौं, बाती मेल्यूं जीव।
लोही सींचौं तेल ज्यूं, कब मुख देखौं पीव॥
कमोदनीं जलहरि बसै, चन्दा बसे अकास।
जो जाही का भावता, सो ताही के पास॥
पांणी केरा बुदबुदा, इसी हमारी जाति।
एक दिनां छिप जाँहिगं, तारे ज्यूं परभाति॥
कस्तूरी कुंडलि बसै, मृग ढूंढ़ै वन मांहि।
ऐसैं घटि घटि राम है, दुनियां देखे नांहि॥
सात समंद की मसि करौं, लेखनि सब बनराइ।
धरती सब कागद करौं, हरि गुण लिख्या न जाइ॥
काय कमंडल भरि लिया, उज्जल निर्मल नीर।
तन मन जोबन भरि पिया, प्यास न मिटी सरीर॥
पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुवा, पंडित भया न कोइ।
ऐकै आषिर पीव का, पढ़ै सु पंडित होइ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सो साईं तन में बसै, ज्यूं पुहपन में बास।
कसतूरी के मिरग ज्यूं, फिरि फिर सूंघै घास॥
अंबर कुंजां कुरलियाँ, गरजि भरे सब ताल।
जिनि पै गोबिंद बीछुटे, तिनि के कवन हवाल॥
साँझ पड़ी, दिन आंथव्यो, चकवी दीनी रोइ।
चल, चकवा, वा देस में, सांझ कदे नहिं होइ॥
बिरहिणि ऊभी पंथ सिर, पंथी बूझै धाइ।
एक सबद कहु पीव का, कब रे मिलहिंगे आइ॥
नैनाँ नीझर लाइया, रहट बहै निसि जाम।
पपीहा ज्यूँ पिव पिव करौं, कब रे मिलहुगे, राम॥
हिरदा भीतर दौं बलै, धुँवा न परगट होइ।
जा के लागी सो लखै, कै जेहि लायी होइ॥
हँसि हँसि कंत न पाइयै, जिन पाया तिन रोइ।
जे हाँसे ही हरि मिलैं, नहीं दुहागिनि कोइ॥
हरि रस पीया जाणिये, कबहुँ न जाइ खुमार।
मैमंता घूमत रहै, नाहीं तन की सार॥
कबीर, बादल प्रेम का, हम परि बरिस्या आइ।
अंतरि भीगी आतमा, हरी भयी बनराय॥
गरजि गरजि बरसै अभी, बादल गहार गँभीर।
चहुँ दिसि चमकै दामिनी, भीजै दास कबीर॥
रिया जाणै रूँखड़ा, उस पाणी का नेह।
सूका का न जाणई, कबहूं बूठा मेह॥
झिरमिर झिरमिर बरसिया, पाहण ऊपरि मेह।
माटी गलि सैंजल भयी, पाहण वोही तेह॥
मानसरोवर सुभर जल, हंसा केलि कराहिं।
मुगताहल मुगता चुगें, अब उड़ि अनत न जाहिं॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हेरत हेरत, हे सखी, रह्या कबीर हेराइ।
बुंद समानी समँद में, सो कत हेरी जाइ॥
जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं, मैं नाहिं।
सब अँधियारा मिटि गया, दीपग देख्या माहिं॥
ऐसा कोई ना मिला, राम भगति का मीत।
तन मन सौंपै मिरग ज्यूं, सुनै वधिक का गीत॥
कबीर, सीप समंद की, रटै पियास पियास।
समंदहिं तिन कावरि गिनै, स्वाति बूंद की आस॥
कबीर, सूता क्या करै? जागि न जपै मुरारि।
एक दिन भी सोवणा, लंबे पांव पसारि॥
कबीर, निरभै राम जपि, जब लगि दीवै बाति।
तेल घट्या, बाती बुझी, सोवैगा दिन राति॥
सातों सबद जु बाजते, घर घर होते राग।
ते मंदिर खाली पड़े, बैसण लागे काग॥
पात झड़ंता यूं कहै, सुनि तरवर बनराइ।
अब के बिछुड़े ना मिलैं, दूरि पड़ेंगे जाय॥
मालिन आवत देखि करि, कलियाँ करी पुकारि।
फूले फूले बिन लिये, काल्हि हमारी बारि॥
आहेड़ी दौं लाइया, मिरग पुकारे रोइ।
जा बन में क्रीड़ा करी, दाझत है बन सोइ॥
नलिनी सायर घर किया, दौं लागी बहुतेणि।
जल ही मांहे जलि मुयी, पूरब जनम लिखेणि॥
काची काया मन अथिर, थिर थिर काम करंत।
ज्यूँ ज्यूँ नर निधड़क फिरै, त्यूँ त्यूँ काल हसंत॥
चलती चाकी देखि करि, दिया कबीरा रोइ।
दुइ पाटन के बीच में, साबित बचा न कोइ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कबीर, माया मोहिनी, मांगी मिलै न आथ।
मनह उतारी भूठ करि, लागी डोलै साथ॥
कबीर ऐसा बीज बो, बारह मास फलंत।
सीतल छाया, गहर फल, पंखी केलि करंत॥
बृच्छ कबहुं नहिं फल भखैं, नदी न संचै नीर।
परमारथ के कारने, साधुन धरा सरीर॥
जो तोको कांटा बवै, ताहि बोव तू फूल।
तोहिं फूल के फूल हैं, वाको हैं तिरसूल॥
सुख के माथे सिलि परे, जो नाम हृदय से जाय।
बलिहारी वा दुक्ख की, पल पल नाम रटाय॥
कबिरा गर्व न कीजिए, काल गहे कर केस।
ना जानौं कित मारिहै, क्या घर क्या परदेस॥
रात गंवाई सोय करि, दिवस गंवायो खाय।
हीरा जनम अमोल था, कौड़ी बदले जाय॥

पद

१

भीजै चुनरिया प्रेम रस बूंदन।
आरत साज के चली है सुहागिन पिय अपने को ढूंढ़न।
काहे की तोरी बनी है चुनरिया काहे के लगे चारों फूंदन।
पांच तत्त की बनी है चुनरिया नाम के लागे फूंदन।
चढ़िगे महल खुल गई रे किबरिया दास कबीर लागे भूलन।

२

भीनी भीनी बीनी चदरिया
काहे के ताना काहे के भरनी, कौन तार से बीनी चदरिया।
इंगला पिंगला ताना भरनी, सुषमन तार से बीनी चदरिया॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आठ कँवल दस चरखा डोलै, पाँच तत्त गुन तीनी चदरिया।
सांई को सियत मास दस लागे, ठोक ठोक के बीनी चदरिया॥
सो चादर सुर नर मुनि ओढ़े, ओढ़ि कै मैली कीनी चदरिया।
दास कबीर जतन से ओढ़ी, ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया॥

३

काहे, री नलिनी, तू कुँम्हिलानी।
तेरे ही नालि सरोवर पानी॥
जल में उतपति, जल में बास।
जल में, नलिनी, तोर निवास॥
ना तलि तपति, न ऊपरि आग।
तोर हेत कहु का सन लागि॥
कहै कबीर, जै उदिक समान।
ते नहिं मये हमरे जान॥

४

पानी बिच मीन पियासी।
मोहि सुनि सुनि आवत हाँसी॥
आतम ग्यान बिना सब सूना, क्या मथुरा क्या कासी॥
घर में दुसत धरीं नहिं सूझै, बाहर खोजन जासी॥
म्रिग की नाभि माँहि कस्तूरी बन बन फिरत उदासी।
कहत कबीर, सुनौ भाई साधो सहज मिलै अबिनासी॥

५

साधो भजन भेद है न्यारा।
कर माला मुद्रा के पहिरे चन्दन घिसे लिलारा।
मूँड़ मुड़ाये जटा रखाये अंग लगाये छारा॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

का पानी पाहन के पूजै कंद मूल फरहारा ।
कहा नेम-तीरथ-व्रत कीन्हें जो नहीं तत्त विचारा ॥
का गाये का पढ़ि दिखलाये का भरमें संसारा ।
का संध्या तरपन के कीन्हें का षटकर्म अचारा ॥
जैसे बधिक ओट टाटी के हाथ लिये विष चारा ।
ज्यों बक ध्यान धरै घट भीतर अपने अंग विकारा ॥
दै परचै स्वामी होइ बैठे करै विषय व्यवहारा ।
ज्ञान ध्यान को भरम न जाने बाद करै नितकारा ॥
फूके कान कुमति अपनी से बोझ लियो सिर भारा ।
बिन सतगुरु गुरु केतिक बहिगे लोभ लहर की धारा ॥
गहिर गँभीर पार नहिं पावै खंड अखंड से न्यारा ।
दृष्टि अपार चलन को सहजै करै भरम कै जारा ॥
निर्मल दृष्टि आतमा जाकी साहेब नाम अधारा ।
कहत कबीर वही जन आवै तैं मैं तजे विकारा ॥

६

साधो, देखो जग बौराना ।
साँची कहौ तौं मारन धावै झूठे जग पतियाना ।
हिन्दू कहत हैं राम हमारा मुसलमान रहमाना ॥
आपस में दोउ लड़े मरतु हैं मरम कोइ नहिं जाना ।
बहुत मिले मोहि नेमी-धर्मी प्रात करें असनाना ।
आतम छोड़ि पषानै पूजैं तिनका थोथा ज्ञाना ।
आसन मारि डिंभ धरि बैठे मन मैं बहुत गुमाना ।
पीपर पाथर पूजन लागे तीरथ बने भुलाना ।
माला पहिरे टोपी पहिरे छाप तिलक अनुमाना ।
साखी सब्दे गावत भूले आतम खबर न जाना ।
घर घर मन्त्र जो देत फिरत हैं माया के अभिमाना ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गुरुवा सहित शिष्य सब बूड़े अंतकाल पछिताना।
बहुतक देखे पीर औलिया पढ़ें किताब कुराना॥
करैं मुरीद कबर बतलावैं उनहूं खुदा न जाना।
हिन्दु की दया मेहर तुरकन की दोनों घर से भागी।
वह करै जिबह वां झटका मारे आग दोऊ घर लागी।
या बिधि हँसत चलत हैं हमको आप कहावें स्याना।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, इनमें कौन दिवाना।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

२

जायसी

जायसी मध्ययुग की प्रेमाश्रयी शाखा के सर्वोत्कृष्ट और प्रतिनिधि कवि हैं। आचार्य शुक्ल जी के अनुसार 'कबीर का कट्टरपन दूर करने का प्रयास अधिकतर चिढ़ाने वाला सिद्ध हुआ, हृदय को स्पर्श करने वाला नहीं।' इस तरह कबीर अपनी खण्डनात्मक प्रवृत्तियों के कारण विरोधी संस्कृतियों के समन्वय में कृतकार्य नहीं हो सके। वस्तुतः परिस्थितियों की माँग यह थी कि मानव-मानव के बीच रागात्मक सम्बन्ध स्थापित किए जाएँ। प्रेमाश्रयी शाखा के कवियों के आगे यही आदर्श था। मुसलमान विजेता अपनी तलवार से जो कार्य नहीं कर सके, इन कवियों ने अपने प्रेमाख्यानों द्वारा उसी का प्रयत्न किया और काफ़ी हद तक सफलता पाई।

मलिक मुहम्मद जायसी का जन्म 'भा अवतार मोर नौसदी'—नौ सौ हिजरी यानी १५ वीं शताब्दी ईसवी में हुआ था। ३० वर्ष की आयु में उनकी गणना अच्छे कवियों में होने लगी थी। 'तीस बरिस ऊपर कवि बदी'। उनका जन्म जायस में हुआ था या कम से कम वह वहाँ आकर स्थायी रूप से बस अवश्य गए थे। कवि ने अपने प्रभावहीन और अनाकर्षक व्यक्तित्व की चर्चा स्वयं की है। शीतला के प्रकोप से वह अपनी बाईं आँख और बाँयें कान की श्रवण-शक्ति खो बैठे थे। वह निजामुद्दीन औलिया की शिष्य परम्परा में दीक्षित हुए थे और इनके गुरु का नाम सैयद अशरफ़ था। उन्होंने अपनी वृद्धावस्था का जैसा वर्णन किया है उससे पता चलता है कि उन्होंने दीर्घ आयु प्राप्त की होगी।

जायसी की तीन ही प्रामाणिक रचनाएँ हैं—आख़िरी कलाम,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अखरावट और पद्मावत। आख़िरी कलाम में क़यामत और इन्साफ़ के दिन का वर्णन है। अखरावट का भी कोई साहित्यिक महत्त्व नहीं। पद्मावत जायसी की कीर्ति का आलोक-स्तम्भ है जो उन्हें कवि-समाज में बहुत ऊँचा स्थान दिलाने में समर्थ हुआ है।

पद्मावत एक प्रेमाख्यान है। प्रेमाख्यानक काव्यों की रचना मसनवियों के ढँग पर की गई थी। इनमें मुसल्मानी-संस्कृति की स्पष्ट झलक मिलती है यद्यपि कथाएँ हिन्दुओं के जीवन से सम्बन्ध रखती हैं। इन काव्यों की विशेषता यह है कि इनमें लौकिक प्रेम के माध्यम से आध्यात्मिक प्रेम की व्यन्जना की गई है। प्रबन्ध-कौशल, प्रकृति-चित्रण और रस-परिपाक आदि की दृष्टि से सर्गबद्ध न होते हुए भी पद्मावत महाकाव्य कहा जाता है।

जायसी बहुज्ञ नहीं थे, पर बहुश्रुत अवश्य थे। उनकी सहृदयता और अनुभव ने ही उन्हें उच्चकोटि का कवि बना दिया था। लौकिक प्रेम की गाथा को अपने हृदय की सरसता में लपेट जायसी ने जिस दिव्य अलौकिक प्रेम का संदेश दिया, वह उनकी सच्ची साधना का सबूत है और उसमें दो संस्कृतियों के समन्वय का सराहनीय प्रयास भी दृष्टिगोचर होता है। सूफी मत वास्तव में इस्लामी परिधान में भारतीय वेदान्त ही है—हाँ, सूफी मत के प्रेमतत्व ने उसे सरसता अवश्य दे दी है।

पद्मावत शृंगार रस-प्रधान काव्य है। शृंगार के संयोग और विप्रलं । दोनों ही पक्षों का इसमें समावेश है। अन्य रस भी प्रसंग-वश गौण रूप से आए हैं। चित्तवृत्ति अनुकूल होने के कारण जायसी ने विप्रलम्भ शृंगार का बड़ा मार्मिक निरूपण किया है। उन्होंने विरही के साथ सारी सृष्टि को विरह भावना से परिव्याप्त दिखाया है। कहीं-कहीं अत्युक्तियों में हास्यास्पदता आगई है लेकिन अगर उनका अभिधेयार्थ न लिया जाए तो उसका बहुत कुछ परिहार हो जाता है। संयोग-शृंगार के स्थूल वर्णन के कारण कहीं-कहीं काव्य की सांकेतिकता नष्ट हो गई

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है। रूपक-निर्वाह के आग्रह ने उत्तरार्द्ध की कथा में बाधा पहुँचाई है। विरह-वर्णन के चित्रों में अध्यात्म-भावना की रक्षा तो हुई ही है; साथ ही उनमें कवि ने अपनी सम्पूर्ण सरसता उँडेल दी है। नागमती के एक-एक शब्द में विरही मानस का अद्वितीय चित्रण है—"पिय सौं कहहु सँदेसड़ा हे भौंरा! हे काग! सो धनि विरहै जरि मुई तहिक धुआँ हम लागि।" "प्रेम की पीर" के ऐसे हृदय-स्पर्शी उदाहरण काव्य-साहित्य में कम ही मिलेंगे। नागमती के रूप में भारतीय नारी का सच्चा स्वरूप उपस्थित किया गया है। सपत्नी के प्रति ईर्ष्याभाव होने पर भी उसकी आत्म-त्याग की भावना में किसी तरह की कमी नहीं आती। उसके विरह में पार्थिवता कम है, मानसिक पक्ष ही उसमें प्रधान है। वह स्वयं कहती है—'मोहि भोग सौं काम न नारी, सौंह दिस्टि की चाहन हारी।' आत्म-त्याग और निःस्वार्थ प्रेम की यह भावना सूर की गोपियों में ही देखने को मिलेगी। प्रिय-मिलन की आशा में विरहिणी नागमती अपने शरीर को जला डालने के लिये भी तैयार है—"यह तनु जारौं छार कै कहहुँ कि पवन उड़ाय; मकु तिहि मारग उड़ि परै कंत धरै जहँ पाएँ।' इस सब कुछ के बाद भी रूपक-निर्वाह लिए नागमती को 'दुनिया धन्धा' कहना जायसी का उसके प्रति भारी अन्याय है। संयोग-शृंगार वर्णन में जायसी उतने सफल नहीं हो सके।

जायसी की रहस्य-भावना की वह विशेषता है कि उन्होंने मिलनौत्सुक्य एकतरफ़ा नहीं दिखाया। पद्मावती और रत्नसेन दोनों ही एक दूसरे से मिलने को व्याकुल हैं। कबीर में यह उत्सुकता जीव की ओर से ही प्रकट की गई है लेकिन जायसी के अनुसार परमात्मा भी साधक से मिलने के लिए उतना ही उत्सुक रहता है।

पद्मावत में अवधी भाषा का प्रयोग किया गया है। तुलसी ने (मानस में)पश्चिमी अवधी का प्रयोग किया है, जायसी ने पूर्वी का। पद्मावत की भाषा जन-भाषा है—अनगढ़ और साधारण। उसमें अलं-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कार-रस आदि के लिए विशेष आग्रह नहीं यद्यपि बिना प्रयास ही कहीं-कहीं उनकी बड़ी सुन्दर व्यञ्जना हो गई है। पच्चीकारी का प्रयास उनकी भाषा में कहीं लक्षित नहीं होता। कुछ वर्णन ऐसे हैं जिनसे पता चलता है कि जायसी को हिन्दू पौराणिक कथाओं का पूर्ण ज्ञान नहीं था—कहीं-कहीं बड़ी भद्दी भूलें हैं। कहीं-कहीं शृंगार-वर्णन में वीभत्सता आ गई है जिससे रसास्वादन में बाधा होती है।

सब कुछ मिलाकर देखें तो जायसी का स्थान हिन्दी साहित्य में बहुत ऊँचा है। उनकी स्वानुभूति-पुष्ट वाणी में प्रत्येक सहृदय की हृत्तन्त्री को झंकृत कर उसमें समान राग जगा देने की क्षमता है और यही कवि की सफलता की मुख्य कसौटी है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मलिक मुहम्मद जायसी

नागमती-वियोग

नागमती चितउर-पथ हेरा । पिउ जो गये पुनि कीन्ह न फेरा ।।
नागर काहु नारि-बस परा । तेइ मोर पिय मो सौं हरा ।।
सुआ काल होइ लेइगा पीऊ । पिउ नहिं जात, जात बरु जीऊ ।।
भयेउ नरायन बावंन-करा । राज करत राजा बलि छरा ।।
करन पास लीन्हेउ कै छंदू । बिप्र-रूप धरि झिलमिल इंदू ।।
मानत भोग गोपिचन्द भोगी । लेइ अपसवा जलन्धर जोगी ।।
लेइगा कृस्नहि गरुड़ अलोपी । कठिन बिछोह, जियहिं किमि गोपी ?
सारस-जोरी कौन हरि मारि बियाधा लीन्ह ?
झुरि-झुरि पिंजर हौं भई, बिरह-काल मोहि दीन्ह ।।१।।
पिउ-बियोग अस बाउर जीऊ । पपिहा निति बोलै पिउ-पीऊ ।।
अधिक काम दाधै सो रामा । हरि लै सुआ गयेउ पिउ-नामा ।।
बिरह-बान तस लाग, न डोली । रकत पसीज, भीजि गइ चोली ।।
सूखा हिया, हार भा भारी । हरि-हरि प्रान तजहिं सब नारी ।।
खन एक आव पेट महँ साँसा । खनहिं जाइ, जिउ होइ निरासा ।।
पवन डोलावहिं, सींचहिं चोला । पहर एक समुझहिं मुख बोला ।।
प्रान पयान होत को राखा । को सुनाव पीतम कै भाखा ।।
आहि जो मारै बिरह कै, आगि उठै तेहि लागि ।
हंस जो रहा सरीर महँ, पाँख जरा, गा भागि ।। ।।
पाट-महादेइ, हिये न हारू । समुझि जीउ, चित चेतु सँभारू ।।
भौंर कँवल सँग होइ मेरावा । सँवरि नेह मालति पहँ आवा ।।
पपिहै स्वाती सौं जस प्रीती । टेकु पियास बाँधु मन बीती ।
धरतिहि जैस गगन सों नेहा । पलटि आव बरखा रितु मेहा ।।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पुनि बसंत रितु आव नवेली। सो रस, सो मधुकर, सो बेली ॥
जिनि अस जीव करसि तू, बारी। यह तरिवर, पुनि उठिहि सँवारी ॥
दिन दस बिनु जल सूखि बिधंसा। पुनि सोइ सरवर, सोई हंसा ॥
मिलहिं जो बिछुरे साजन, अंकम भेंटि गहंत।
तपनि मृगसिरा जे सहैं, ते अद्रा पलुहंत ॥३॥
चढ़ा असाढ़, गगन घन गाजा। साजा बिरह दुन्द, दल बाजा ॥
धूम, साम, धीरे घन धाये। सेत धजा बग-पाँति देखाये ॥
खड़ग-बीजु चमकै चहुँ ओरा। बुंद-बान बरसहिं घन घोरा ॥
ओनयी घटा आइ चहुँ फेरी। कंत, उबारु, मदन हौं घेरी ॥
दादुर, मोर, कोकिला, पीऊ। गिरै बीजु, घट रहै न जीऊ ॥
पुस्य नखत सिर ऊपर आवा। हौं बिनु नाह, मन्दिर को छावा ॥
अद्रा लागि, लागि भुइं लेई। मोहि बिनु पिउ को आदर देई ?
जिन घर कंता, ते सुखी, तिन्ह गारौ औ गर्व।
कंत पियारा बाहिरै, हम सुख भूला सर्व ॥४॥
सावन बरस मेह अति पानी। भरनि परी, हौं बिरह झुरानी ॥
लाग पुनरबसु पीउ न देखा। भइ बाउरि, कहँ कंत सरेखा ?
रकत कै आँसु परहिं भुइँ टूटी। रेंगि चलीं, जस बीरबहूटी ॥
सखिन रचा पिउ संग हिंडोला। हरियारि भूमि, कुसुंभी चोला ॥
हिय हिंडोल अस डोलै मोरा। बिरह झुलाइ देह झकझोरा ॥
बाट असूझ अथाह गम्भीरी। जिउ बाउर भा फिरै भंभीरी ॥
जग जल बूड़ जहाँ लगि ताकी। मोरि नाव खेवक बिनु थाकी ॥
परबत-समुद अगम बिच, बीहड़ बन, घन ढाँख।
किमि कै भेंटौं, कंत तुम ? ना मोहिं पाँव न पाँख ॥५॥
भा भादौं दूभर अति भारी। कैसैं भरौं रैनि अंधियारी ?
मन्दिर सून, पिउ अनतै बसा। सेज-नागिनी फिरि-फिरि डसा ॥
रहौं अकेलि गहे एक पाटी। नैन पसारि मरौं हिय फाटी ॥
चमक बीजु, घन गरजि तरासा। बिरह काल होइ जीउ गरासा ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बरसै मघा झकोरि-झकोरी । मोर दुइ नैन चुवैं जस ओरी ॥
धनि सूखै भरे भादौं माँहा । अबहु न आयेन्हि सींचेन्हि नाहा ॥
पुरबा लागि, भूमि जल पूरी । आक-जवास भई तस झूरी ॥
जल-थल भरे अपूर सब, धरति गगन मिलि एक ।
धनि जोबन-अवगाह महँ, दे बूड़त, पिउ, टेक ॥६॥

लाग कुवार, नीर जग घटा । अबहूँ आउ, कंत, तन लटा ॥
तोहि देखे, पिउ, पलुहै काया । उतरा चित्त, बहुरि करु माया ॥
चित्रा मित्र मीन कर आवा । पपिहा पीउ पुकारत पावा ॥
उआ अगस्त, हस्ति घन गाजा । तुरय पलानि चढ़े रन राजा ॥
स्वाति-बूँद चातक-मुख परे । समुद सीप मोती सब भरे ॥
सरवर सँवरि हंस चलि आये । सारस कुरलहिं, खंजन देखाये ॥
भा परगास, काँस बन फूले । कंत न फिरे, बिदेसहि भूले ॥
बिरह-हस्ति तन सालै, घाय करै चित चूर ।
बेगि आइ, पिउ, बाजहु, गाजहु होइ सदूर ॥७॥

कातिक सरद-चन्द-उजियारी । जग सीतल, हौं बिरहै जारी ॥
चौदह करा चाँद परगासा । जनहुँ जरै सब धरति-अकासा ॥
तन, मन, सेज करै अगि-दाहू । सब कहँ चन्द, भयेउ मोहिं राहू ॥
चहूँ खंड लागै अँधियारा । जौ घर नाहीं कंत पियारा ॥
अबहुँ, निठुर, आउ एहि बारा । परब दिवारी होइ संसारा ॥
सखि झूमक गावैं अंग मोरी । हौं झुरावँ, बिछुरी मोरि जोरी ॥
जेहि घर पिउ सो मनोरथ पूजा । मो कहँ बिरह, सवति-दुख दूजा ॥
सखि मानैं तिउहार सब गाइ, दिवारी खेलि ।
हौं का गावौं कंत बिनु, रही छार सिर मेलि ? ॥८॥

अगहन दिवस घटा, निसि बाढ़ी । दूभर रैनि जाइ किमि गाढ़ी ॥
अब धनि बिरह दिवस भा राती । जरौं बिरह जस दीपक-बाती ॥
काँपै हिया, जनावै सीऊ । तौ पै जाहि, होइ सँग पीऊ ॥
घर-घर चीर रचे सब काहू । मोर रूप-रँग लेइगा नाहू ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पलटि न बहुरा, गा जो बिछोई। अबहूँ फिरै, फिरै रँग सोई॥
बज्र-अगिनि बिरहिनि हिय जारा। सुलुगि-सुलुगि दगधै होइ छारा॥
यह दुख-दगध न जानै कंतू। जोबन-जनम करै भसमंतू॥
पिउ सौं कहेउ सँदेसड़ा, हे भौंरा, हे काग।
सो धनि बिरहै जरि मुई, तेहि क धुँवा हम लाग॥९॥
पूस जाड़ थर-थर तन काँपा। सुरुज जाइ लंका-दिसि चाँपा॥
बिरह बाढ़, दारुन भा सीऊ। कंपि-कँपि मरौं- लेइ हरि जीऊ॥
कंत कहाँ, लागी ओहि हियरे। पंथ अपार, सूझ नहि नियरे॥
सौंर सपेती आवै जूड़ी। जानहु सेज हिवंचल बूड़ी॥
चकई निसि बिछुरै, दिन मिला। हौं दिन-राति बिरह-कोकिला॥
रैनि अकेलि, साथ नहिं सखी। कैसे जियै बिछोहा पखी॥
बिरह सचान भयेउ तन जाड़ा। जियत खाइ औ मुये न छाँड़ा॥
रकत ढुरा, माँसू गरा, हाड़ भयेहु सब संख।
धनि सारस होइ ररि मुयी, पीउ समेटहि पंख॥१०॥
लागेउ माघ, परै अब पाला। बिरहा काल भयेउ जड़काला॥
पहल-पहल तन रूई झाँपै। हहरि-हहरि अधिकौ हिय काँपै॥
आह, सूर होइ, तपु रे, नाहा। तोहि बिनु जाड़ न छूटै माहा॥
एहि माहँ उपजै रसमूलू। तूँ सो भौंर, मोर जोबन फूलू॥
नैन चुवहिं, जस महवट नीरू। तोहि बिन अंग लाग सर चीरू
टप-टप बूंद परहिं, जस ओला। बिरह पवन होइ मारै झोला॥
केहि क सिंगार, को पहिर पटोरा। गीउ न हार, रही होइ डोरा॥
तुम बिनु कांपै धनि हिया, तन तिनउर भा डोल।
तेहि पर बिरह जराइकै, चहै उड़ावा झोल॥१२॥
फागुन पवन-झकोरा बहा। चौगुन सीउ, जाइ नहिं सहा॥
तन जस पियर-पात भा मोरा। तेहि पर बिरह देह झकझोरा॥
तरिवर झरहिं झरहिं बन-ढाखा। भयी ओनंत फूलि-फरि साखा॥
करहि बनसपति हिये हुलासू। मो कहं भा जग दून उदासू॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

फागु करहिं सब चांचरि जोरी । मोहिं तन लाइ दीन्हि जस होरी ॥
जौ पै पीउ जरत अस पावा । जरत-मरत मोहि रोस न आवा ॥
राति-दिवस बस यह जिउ मोरे । लगौं निहोर, कंत, अब तोरे ॥
यहु तन जारौं छार कै, कहौं कि 'पवन उड़ाव' ।
मकु तेहि मारग उड़ि परै, कंत धरै जहँ पाँव ।।१२॥
चैत बसंता होइ धमारी । मोहि लेखे संसार उजारी ॥
पंचम विरह पंच सर मारै । रकत रोइ सगरौं बन ढारै ॥
बूड़ि उठे सब तरिवर-पाता । भीजि मजीठ, टेसु-बन राता ॥
बौरे आम फरै अब लागे । अबहुँ आउ घर, कंत सभागे ॥
सहस भाव फूलीं बनसपती । मधुकर घूमहिं संवरि मालती ॥
मो कहँ फूल भये सब काँटे । दिस्टि परत जग लागहिं चाँटे ॥
फरि जोबन भये नारंग साखा । सुआ-बिरह अब जाइ न राखा ॥
घिरिनि-परेवा होइ, पिउ, आउ बेगि, परु टूटि ।
नारि पराये हाथ है, तोहि बिनु पाव न छूटि ॥१३॥
भा बैसाख, तपनि अति लागी । चोआ-चीर-चंदन भा आगी ॥
सूरुज जरत हिवंचल ताका । बिरह-बजागि सौंह रथ हाँका ॥
जरत बजागिनि करु पिउ, छाँहा । आइ बुझाउ, अंगारन्ह माँहा ॥
तोहि दरसन होइ सीतल नारी । आइ आगि ते कह फुलवारी ॥
लागिउँ जरै जरै, जस भारू । फिरि-फिरि भूंजेसि, तजिउँ न बारू ॥
सरवर-हिया घटत निति जाई । टूक-टूक होइकै बिहराई ॥
बिहरत हिया, करहु पिय टेका । दीठि दवंगरा मेरवहु एका ॥
कँवल जो बिगसा मानसर, बिनु जल गयेउ सुखाइ ।
अबहुँ बेलि फिरि पलुहै, जौ पिउ सींचै आइ ॥१४॥
जेठ जरै जग, चलै लुवारा । उठिहिं बवंडर परहिं अंगारा ॥
बिरह गाजि हनुवंत होइ जागा । लंका-दाह करै तनु लागा ॥
चारिहु पवन झकोरै आगी । लंका दाहि पलंका लागी ॥
दहि भइ साम नदी कालिंदी । बिरह क आगि कठिन अति मंदी ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उठै आगि, औ आवै आँधी। नैन न सूझ, मरौं दुख बाँधी॥
अधजर भइउं, मांसु तन सूखा। लागेउ बिरह काल होइ भूखा॥
माँसु खाइ अब हाड़न्ह लागै। अबहुँ आउ, आवत सुनि भागै॥
गिरि, समुद्र, ससि, मेघ, रवि, सहि न सकहिं वह आगि।
मुहमद, सती सराहियै, जरै जो अस पिउ लागि॥१५॥

रोइ गँवाये बारह मासा। सहस-सहस दुख एक-एक साँसा॥
तिल-तिल बरस-बरस परि जाई। पहर पहर जुग-जुग न सेराई॥
सो नहिं आवै रूप मुरारी। जा सो पाव सोहाग सु-नारी॥
साँझ भये झुरि-झुरि पंथ हेरा। कौनि सो घरी, करै पिउ फेरा?
दहि कोइला भइ कंत-सनेहा। तोला माँसु रही नहिं देहा॥
रकत न रहा, बिरह तन गरा। रती-रती होइ नैनन्ह ढरा॥
पाँइ लागि जोरै धनि हाथा। जारा नेह, जुड़ावहु, नाथा॥
बरस दिवस धनि रोइ कै, हारि परी चित झंखि।
मानुख घर-घर बूझि कै बूझै निसरी पांख॥१६॥

कुहुकि-कुहुकि जस कोइल रोयी। रकत-आँसु घुंघची बन बोयी॥
भइ कर-मुखी, नैन-तन राती। को सेराव? बिरहा-दुख ताती॥
जहँ-जहँ ठाढ़ि होइ बनबासी। तहँतहँ होइ घंघचि कै रासी॥
बूँद-बूँद महँ जानहुँ जीऊ। गुंजा गूंजि करै 'पिउ-पीऊ'॥
तेहि दुख भये परास निपाते। लोहू बूड़ि उठे होइ राते॥
राते बिंब भीजि तेहि लोहू। परवर पाक, फाट हिय गोहूँ॥
देखौं जहाँ, होइ सोइ राता। जहाँ सो रतन, कहै को बाता?
नहिं पावस ओहि देसरा, नहिं हेवंत, बसंत।
ना कोकिल, न पपीहरा, जेहि सुनि आवै कंत॥१७॥

———

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

३

सूरदास

मुसलमान-विजेताओं के बढ़ते हुए अत्याचारों के कारण निराशा के अथाह सागर में डूबती-उतराती हुई; अस्तित्व-अनस्तित्व के झूले पर झूलती हुई लेकिन अपने चिर-संचित संस्कारों और सभ्यता की रक्षा की अदम्य लालसा से युक्त मध्ययुगीन हिंदू जनता में जमती हुई उदासी को धोकर उसमें एक बार फिर से जीने की इच्छा जगाने में महाकवि सूरदास का बड़ा हाथ रहा है। उन्होंने हिंदुओं के मुरझाए मनों को सगुण-भक्ति की अमृतधारा से आप्लावित कर उनमें जीवन के प्रति अनुराग उत्पन्न किया।

भारत के अन्य महापुरुषों की ही तरह सूरदास के जन्म, जाति, माता-पिता और स्वर्गवास के सम्बन्ध में भी निश्चित और विश्वसनीय प्रमाणों के अभाव में अटकल और अनुमानों से ही काम लिया जाता रहा है। सूरदास के समकालीन या उसके आसपास के इसी नाम के दो-तीन व्यक्तियों के व्यक्तित्व को इस तरह मिला दिया गया है कि उनमें से असली सूरदास को छाँट निकालना असम्भव-सा हो गया है। यों इस सम्बन्ध में जो कुछ भी प्रमाण हस्तगत हुए हैं उनके आधार पर विद्वानों ने उनका जन्म सं० १५४० और स्वर्गवास सं० १६२० में हुआ माना है। 'साहित्य-लहरी' के एक पद के आधार पर उन्हें चंदवरदाई का वंशज ब्रह्मभट्ट माना गया है लेकिन कुछ अन्य विद्वान उन्हें सारस्वत ब्राह्मण मानते हैं। सूर के पदों में रूप-सौंदर्य, प्राकृतिक क्रिया कलापों और विविध-रंगों का जैसा स्वाभाविक और चमत्कारपूर्ण वर्णन पाया जाता है, उसे देखते हुए उन्हें जन्मान्ध मानने का जी नहीं होता। यद्यपि स्वयं सूर ने अपने आपको 'द्विविध-आँधरो' कहा है

19688
CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

लेकिन हो सकता है यह बाद की बात हो। लगभग सं० १५८० में वह वल्लभाचार्य के पुष्टि-मार्ग में दीक्षित हुए।

सूरदास के बृहद् ग्रन्थ 'सूरसागर' के अतिरिक्त 'सूरसारावली' और 'साहित्यलहरी' ये दो और रचनाएँ ऐसी हैं जो सूरदास की कही जाती हैं लेकिन इन दोनों ही के बारे में विद्वानों में ऐकमत्य नहीं है। सूरसागर के भी कुछ अंश प्रक्षिप्त बताए जाते हैं।

पुष्टि मार्ग में दीक्षित होने से पहले सूर की कृष्ण-भक्ति दास्य-भाव की थी। विनय के पद कदाचित् उसी काल की रचना हैं जिनमें स्वामी-सेवक भाव स्पष्ट लक्षित होता है। लेकिन बाद में वल्लभाचार्य से दीक्षित होने के पश्चात् उनकी भक्ति का स्वरूप बदल गया—जिसने सूरदास को महाकवि सूरदास बना दिया। सख्य-भाव अपना लेने पर उन्होंने अपने आराध्य देव से अत्यंत निकटता और अनन्यता का अनुभव किया। नयनविहीन कवि की तीक्ष्ण मनोवैज्ञानिक दृष्टि ने बालक के अंतरतम में पैठ उसके सूक्ष्मातिसूक्ष्म आन्तरिक भावों का इस ख़ूबी से उद्घाटन किया मानों स्वयं वीणापाणि भगवती सरस्वती ने किसी भावुक बालक की जिह्वा पर बैठ उसके सुकुमार अन्तर्भावोंको वाणी दे दी हो।

यदि हम मनुष्य-जीवन के सम्पूर्ण विस्तार को लें तो सूर की दृष्टि सीमित दिखाई पड़ेगी लेकिन अगर हम उन क्षेत्रों को लें जो उन्होंने अपने लिए चुने थे—अर्थात् वात्सल्य और श्रृंगार के क्षेत्रों को—तो हम देखेंगे कि इन क्षेत्रों में—विशेषकर वात्सल्य में—जहाँ तक सूर की पहुँच है उसके आसपास तक भी हिंदी साहित्य का ही क्या शायद संसार का कोई कवि नहीं फटक सकता। वे इसके एकछत्र सम्राट हैं। इन क्षेत्रों का एक-एक कोना वे झाँक आए। इनके प्रवर्त्तक रति स्थायी के भीतर की मानसिक वृत्तियों और दशाओं का जितना गहरा अनुभव सूर ने किया, किसी अन्य कवि ने नहीं। शुक्ल जी के शब्दों में—'हिंदी-साहित्य में श्रृंगार का रस-राजत्व अगर किसी ने पूर्ण रूप से दिखाया तो सूर ने।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सूरदास ने बालकृष्ण की क्रीड़ा वर्णन के अद्वितीय चित्र प्रस्तुत किए हैं। कृष्ण के सौन्दर्य-वर्णन से मानों वे अघाते ही नहीं। उन्होंने बालक का सौन्दर्य माता की आँखों से देखा। बालक की हर एक लीला माँ के हृदय में वात्सल्य-रस को उद्दीप्त करती है। कभी वह 'हरिहिं पालनै झुलावै' तो कभी वह कृष्ण को दूध पीने पर राज़ी करने के लिए प्रलोभन देती है:—"कजरी कौ पय पियहु लला तेरी चोटी बढ़ै।" कभी कृष्ण खीझकर माँ को चुनौती देते हैं—'तू मोही कौं मारन सीखी, दाउहिं कबहुँ न खीझै'—कारण—'जानि परायौ जायौरी।' माँ यशोदा तुरन्त ही बालक के मन के इस भाव का शमन करतीं हैं—'सुनहुकान्ह बलभद्र चबाई जनमत ही कौ धूत; सूरस्याम मोहि गोधन की सौं हौं माता तू पूत।' कितना मनोहर, हृदयग्राही और स्वाभाविक चित्रण है।

धीरे-धीरे कृष्ण में और उधर राधा व अन्य गोपियों में यौवन-भाव का उदय होता है। साहचर्य से उनके हृदयों में पारस्परिक प्रेम का स्वाभाविक विकास होता है। इस प्रेम का आधार बड़ा सुदृढ़ और अडिग है। प्रेम की इस गहरी नींव पर ही सूर ने संयोग और विप्र-लम्भ के विशाल-प्रासाद का निर्माण किया है।

आगे चलकर कृष्ण के मथुरा चले जाने पर गोपियों के विरह वर्णन में तो मानों सूर ने अपने हृदय का सम्पूर्ण रस उँडेल दिया है। भ्रमर-गीत का एक-एक पद महाविरह का अथाह समुद्र है। मिलन के समय सुख देने वाली हर चीज़ अब काटने को दौड़ती है। वियोगिनी गोपियाँ हरे-भरे पेड़ों को निर्लज्ज कहकर उन्हें कोसती हैं—'मधुवन! तुम कत रहत हरे? विरह वियोग श्यामसुन्दर के ठाढ़े क्यों न जरे?" भ्रमर को लक्षित करके ज्ञान का पाठ पढ़ाने के लिए आए हुए ऊधो को जो मीठे-मीठे उपालम्भ और झिड़कियाँ दी जाती हैं; उनका एक-एक शब्द सूर की भावुकता, सहृदयता और वाग्वैदग्ध्य का परिचायक है। गोपिकाएँ अनेक प्रकार से अपने एकनिष्ठ प्रेम का वर्णन कर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ऊधो का ज्ञान-गर्व चूर-चूर कर देती हैं। बेचारे ऊधो को लेने के देने पड़ जाते हैं। वे कहती हैं—'ऊधो! मन नाहीं दस-बीस! एक हुतो सो गयो श्याम सँग, को अवराधै ईस।' कभी वे ऊधो का मज़ाक उड़ाती हैं—'आए जोग सिखावन पाँड़े।' 'हम तौ निपट गँवार अहीरिनि, जोग दीजिए ज्ञानिन' और अंत में वे ऊधो से कहती हैं कि अच्छा कृष्ण हमारी ख़ातिर नहीं आते तो न सही पर ये गायें? 'ऊधो.! इतनी कहियो जाए! अति कृश गात भईं ये तुम बिनु परम दुखारी गाय।' भ्रमर-गीत के हर शब्द में जान है और है हृदय को छू लेने की क्षमता।

सूर की भाषा व्रज की चलती बोली से बिल्कुल मिलती-जुलती है—सरल और सहज ही मन पर प्रभाव डालने वाली। व्रजभाषा की सबसे पहली साहित्यिक कृति इन्हीं की है जो अपनी पूर्णता से हमें आश्चर्य में डाल देती है और इस अनुमान को जन्म देती है कि उस का यह स्वरूप क्रमिक-विकास का परिणाम होना चाहिए। उनका काव्य साहित्य के सभी उपकरणों से परिपुष्ट है।

सूरदास ने महाकवि जयदेव और विद्यापति की गीत-परम्परा को तो अपनाया लेकिन उनकी पार्थिवता का तिरस्कार कर मानसिक-पक्ष पर बल दिया और इस क्षेत्र में अपना एकाधिपत्य स्थापित करने के साथ ही साथ कृष्ण-भक्ति-काव्य की महत्ता कहीं अधिक कर दी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सूरदास

विनय

१

मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै।
जैसे उड़ि जहाज कौ पंछी फिर जहाज पर आवै॥
कमल-नयन कौं छाँड़ि महातम और देव को ध्यावै।
परम गंग को छाँड़ि पियासो दुर्मति कूप खनावै॥
जिन मधुकर अम्बुज रस चाख्यो क्यों करीलफल खावै।
सूरदास प्रभु कामधेनु तजि छेरी कौन दुहावै॥

२

प्रभु मोरे अवगुन चित न धरो।
समदरसी है नाम तिहारो चाहे तो पार करो॥
इक नदिया इक नारि कहावत मैलोहिं नीर भरो।
जब दोनों मिल एक बरन भये सुरसरि नाम परो॥
इक लोहा पूजा में राखत इक घर बधिक परो।
पारस गुन अवगुन नहिं चितवै कंचन करत खरो॥
यह माया भ्रम-जाल कहावै सूरदास सगरो।
अबकी बार मोहि पार उतारो नहिं प्रन जात टरो॥

बाल-लीला

३

जसोदा हरि पालनै झुलावै।
हलरावै दुलराइ मल्हावै जोई सोई कछु गावै॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मेरे लाल को आउ निदरिया काहे न आनि सुवावै।
तू काहे न वेगि सी आवै तोकों कान्ह बुलावै॥
कबहुँ पलक हरि मूँदि लेत हैं कबहुँ अधर फरकावै।
सोवत जानि मौन ह्वै रहि-रहि करि करि सैन बतावै॥
इहि अन्तर अकुलाइ उठे हरि जसुमति मृदु स्वर गावै।
जो सुख 'सूर' अमर मुनि दुरलभ सो नँद भामिनि पावै॥

४

जसुमति मन अभिलाष करै।
कब मेरो लाल घुटुरुवन रैंगे कब धरनीं पग द्वैक धरै॥
कब द्वै दन्त दूध के देखौं कब तुतरे मुख बैन भरै।
कब नन्दहिं कहि बाबा बोलै कब जननी कहि मोहि ररै॥
कब मेरौ अँचरा गहि मोहन जोइ सोइ कहि मोसों झगरै।
कबधौं तनिक-तनिक कछु खैहै अपने करसों मुखहि भरै॥
कब हँसि बात कहैगो मोसों छबि पेखत दुख दूरि टरै।
स्याम अकेले आँगन छाँड़ें आप गई कछु काज घरै॥
एहि अन्तर अँधवाइ उठी इक गरजत गगन सहित थहरै।
सरदास ब्रज लोग सनत धुनि जो जहँ-तहँ सब अतिहि डरै॥

५

सोभित कर नवनीत लिये।
घुटुरुन चलत रेनु-तनु मंडित मुख दधि लेप किये॥
चारु कपोल लोल लोचन गोरोचन तिलक दिये।
लट लटकनि मनो मत्त मधुपगन मादक मदहिं पिये॥
कठुला कंठ वज्र केहरि-नख राजत रुचिर हिये।
धन्य सूर एको पल या सुख का सत कल्प जिये॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

६

खेलन अब मेरी जात बलैया।
जब मोहि देखत लरिकन के सँग तबहि खिजत बल भैया ॥
मोसों कहत तात बसुदेव को देवकी तेरी मैया।
मोल लियो कछु दै बसुदेव कों करि करि जतन बटैया ॥
अब बाबा कहि कहत नन्द को यसुमति को कहि मैया।
ऐसेहि कहि सब मोहि खिजावत तब उठि चलो खिसैया ॥
पाछे नन्द सुनत है ठाड़े हँसत-हँसत उर लैया।
सूर नन्द बलरामहिं धिरयो सुनि मन हरख कन्हैया ॥

७

मैया मोहि दाऊ बहुत खिझायो।
मोसों कहत मोल को लीनो तोहि जसुमत कब जायो।
कहा कहौं एहि रिस के मारे खेलन हौं नहिं जातु।
पुनि पुनि कहत कौन है माता को है तुमरो तातु ॥
गोरे नन्द जसोदा गोरी तुम कत स्याम शरीर।
चुटकी दै दै हँसत ग्वाल सब सिखै देत बलबीर ॥
तू मोही को मारन सीखी दाउहिं कबहुँ न खीझै ॥
मोहन कों मुख रिस समेत लखि जसुमत सुनि सुनि रीझै ॥
सुनहु कान्ह बलभद्र चबाई जनमत ही कौ धूत।
सूर-स्याम मोहि गोधन की सौं हौं माता तू पूत ॥

८

मैया ! मैं नाहीं दधि खायो।
ख्याल परे ये सखा सबै मिलि मेरे मुख लपटायो ॥
देखि तुही छींके पर भाजन ऊँचे घर लटकायो।
तुही निरखि नान्हे कर अपने मैं कैसे कर पायो ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मुख दधि पोंछि कहत नँदनन्दन दोना पीठि दुरायो।
डारि साँट मुसुकाइ तबहिं गहि सुत को कंठ लगायो॥
बाल-बिनोद मोद मन मोह्यो भगति प्रताप दिखायो।
सूरदास प्रभु जसुमति के मुख सिव बिरंचि बौरायो॥

रूप

९

देखि री हरि के चंचल नैन।
खंजन मीन मृगज चपलाई नहिं पटतर एक सैन।
राजिवदल, इन्दीवर, सतदल, कमल, कुसेसय जाति।
निसिमहिं निद्रत, प्रातहि विकसत, ये विकसत दिन राति॥
अरुन सेत सिति झलक पलक मति को बरनै उपमाइ।
मनु सर सुति गंगा जमुना मिलि संगम कीन्हों आइ॥
अवलोकित जलधार तेज अति तहाँ न मन ठहरात।
'सूर' स्याम लोचन अपार छबि उपमा सुनि सरमात॥

मुरली माधुरी

१०

मुरली तऊ गोपालहिं भावति।
सुन री सखी जदपि नँदनन्दहिं नाना भाँति नचावति॥
राखति एक पायँ ठाढ़ी करि अति अधिकार जनावति।
कोमल अंग आपु आज्ञा गुरु कटि टेढ़ी ह्वै जावति॥
अति आधीन सुजान कनौड़े गिरधर नारि नवावति।
आपुन पौढ़ि अधर-सेज्या पर कर पल्लव सन पद पलुटावति॥
भृकुटी कुटिल फरकि नासा पुट हम पर कोपि कुपावति।
सूर प्रसन्न जानि एकौ छिन अधर सु सीस डोलावति॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भ्रमर गीत

११

बिलग जनिमानहु ऊधो प्यारे ।
वह मथुरा काजर की कोठरी जे आवहिं ते कारे ॥
तुम कारे, सुफलक सुत कारे, कारे मधुप भँवारे ।
तिनके संग अधिक छबि उपजत कमलनैन मनिआरे ॥
मानहु नील माट तैं काढ़े ले जमुना जु पखारे ।
ता गुन स्याम भई कालिन्दी सूर स्याम गुन न्यारे ॥

१२

निर्गुन कौन देस को बासी ?
मधुकर ! हँसि समुझाय सौंह दे बूझति साँच, न हाँसी ॥
को है जनक, जननि को कहियत, कौन नारि, को दासी ।
कैसो बरन भेस है कैसो केहि रस में अभिलासी ॥
पावैगो पुनि कियो आपनो जो रे कहैगो गाँसी ।
सुनत मौन ह्वै रह्यौ ठग्यो-सो सूर सबै मति नासी ॥

१३

उर में माखन चोर गड़े ।
अब कैसेहुँ निकसत नहिं ऊधो तिरछे ह्वै जु अड़े ॥
जदपि अहीर जसोदानन्दन तदपि न जात छड़े ।
वहाँ बने जदुबंस महाकुल हमहिं न लगत बड़े ॥
को बसुदेव देवकी वै को, ना जानें औ बूझें ।
सूर स्यामसुन्दर बिनु देखे और न कोऊ सूझें ॥

१४

निसि दिन बरसत नैन हमारे ।
सदा रहत पावस ऋतु हम पै जब तें स्याम सिधारे ॥

Sri Pratap Singh Library Srinagar
CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दृग अंजन लागत नहिं कबहूँ उर कपोल भए कारे ।
कंचुकि नहिं सूखत सुनु सजनी उर बिच बहत पनारे ।।
सूरदास प्रभु अंबु बढ़्यो है गोकुल लेहु गवारे ।
कहँ लौं कहौं स्याम-घन-सुन्दर विकल होत अति भारे ।।

१५

सखी, इन नैननि तें घन हारे ।
बिनही रितु बरसत निसि बासर, सदा सजल दोउ तारे ।।
ऊरध साँस समीर तेज अति, सुख अनेक द्रुम डारे ।
बदन सदन में बसे बचन खग रितु पावस के मारे ।।
ढरि ढरि बून्द परत कंचुकि पर मिलि अंजन सौं कारे ।
मानहुँ सिव की पर्नकुटी बिच धारा स्याम निनारे ।।
सुमिरि सुमिरि गरजत, अरु छाँड़त अश्रु सलिल बहु धारे ।
बूड़त ब्रजहि, सूर. को राखै बिनु गिरिवरधर प्यारे ?

१६

उपमा नैननि एक रही ।
कविजन कहत कहत चलि आये, सुधि करि नाहिं कही ।।
कहे चकोर, मुख-बिधु बिनु जीवत भ्रमर नहीं उड़िजात ।
हरि-मुख कमल-कोस बिछुरे तैं, ठाले कत ठहरात ।।
आये बधन व्याध ह्वै ऊधो, जो मृग, क्यौं न पलात ।
भाजि जाहिं बन सघन स्याम में जहाँ न कोऊ घात ।।
खंजन मनरंजन न होहिं ये, कबहुँ नाहिं अकुलात ।
पंख पसारि न होत चपल गति, हरि समीप मुकुलात ।।
प्रेमि न होहिं, कवन बिधि कहिये, भूठे ही तन आड़त ।
सूरदास, मीनता कछु इक, जल भर संग न छाँड़त ।।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

१७

दूर करहु बीना कर धरिबो।
मोहे मृग नाहीं रथ हाँक्यो नाहिन होत चन्द को ढरिबो॥
बीती जाहि पै सोई जाने कठिन है प्रेम पास को परिबो।
जब तें बिछुरे कमल नयन सखि, रहत न नयन नीर को गरिबो॥
सीतल चन्द अगिनि सम लागत कहिये धीर कौन विधि धरिबो।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस बिनु सब झूठो जतननि को करिबो॥

१८

तब ते इन सबहिन सचु पायो।
जबते हरि सन्देस तिहारो सुनत तवाँरो आयो॥
फूले ब्याल दुरे ते प्रगटे पवन पेट भरि खायो।
फूले मिरगा चौंक चखन ते हुते जे बन बिसरायो॥
ऊँचे बैठि विहंग सभा बिच कोकिल मंगल गायो।
निकसि कन्दरा ते केहरि हू माथे पूँछ हिलायो॥
गह्वर ते गजराज निकसि कै अँग-अँग गर्व जनायो।
सूर बहुरिहौ कह राधा कै करि हौ बैरिन भायो॥

१६

प्रीति करि काहू सुख न लह्यो।
प्रीति पतंग करी दीपक सों, आपै प्रान दह्यो॥
अलिसुत प्रीति करी जलसुत सों, संपुट माँझ गह्यो।
सारँग प्रीति करी जु नाद सौं, सनमुख बान सह्यो॥
हम जो प्रीति करी माधव सों, चलत न कछू कह्यो।
सूरदास, प्रभु बिन दुख दूजो, नैननि नीर बह्यो॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वैराग्य

२०

जा दिन मन-पंछी उड़ि जैहैं ।
ता दिन तेरे तन-तरुवर के, सबै पात झरि जैहैं ॥
घर के कहैं बेगि ही काढ़ो, भूत भये कोउ खैहैं ।
जा प्रीतम सों प्रीति घनेरी, सोऊ देखि डरैहैं ॥
कहँ वह ताल कहाँ वह सोभा, देखत धूरि उड़ैहैं ।
भाई-बन्धु अरु कुटुम-कबीला, सुमिरि-सुमिरि पछतैहैं ॥
बिनु गोपाल कोउ नहिं अपनो, जसु अपजसु रहि जैहैं ।
जो सूरज दुरलभ देवन कों, सो सतसंगति पैहैं ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

४

गोस्वामी तुलसीदास

गोस्वामी तुलसीदास का जिस समय आविर्भाव हुआ उस समय जन-जीवन पर अनाचार का साम्राज्य छाया हुआ था; पतनोन्मुख जनता विलास-भाव और निष्क्रियता में डूबी हुई थी। गोस्वामीजी उच्छृङ्खलता के उठते हुए स्वरों को दबाते हुए; कट्टरता की शृङ्खलाओं को शिथिल करते हुए; लोक-कल्याण, मर्यादा और धार्मिक-सहिष्णुता का सन्देश लेकर अवतरित हुए। दूरदर्शी तुलसीदास में वासना-विरोधी भाव इतना तीव्र है कि उन्होंने अपने आराध्यदेव के चरित्र में कहीं इसकी गन्ध भी नहीं आने दी। कबीर को छोड़ अन्य निर्गुणपंथी कवियों में अनुभूति की वह तीव्रता न थी, जो हृदय की तन्मयता से उत्पन्न होती है और जो काव्यात्मा है। तुलसी (और सूर) ने काव्य की आत्मा को जाग्रत करने का सफल प्रयत्न किया। युगपुरुष के रूप में तुलसी की महत्ता स्वीकार करते हुए गांधीजी ने लिखा है:—'भारत की सभ्यता की रक्षा करने में तुलसीदास जी ने बहुत अधिक भाग लिया था। तुलसीदास के चेतनमय रामचरितमानस के अभाव में किसानों का जीवन जड़वत् और शुष्क बन जाता। पता नहीं कैसे क्या हुआ पर यह तो निर्विवाद है कि तुलसीदास जी की भाषा में जो प्राणप्रद शक्ति है वह दूसरों की भाषा में नहीं पाई जाती।'

गोस्वामी जी के जन्मस्थान के सम्बन्ध में विद्वान् अभी तक किसी सर्वमान्य निर्णय पर नहीं पहुँच सके। गोसाईं-चरित तथा तुलसी-चरित के अनुसार उनका जन्म संवत् १५५४ ठहरता है लेकिन डाक्टर ग्रियर्सन ने जनश्रुति के आधार पर १५८९ सं० माना है। अधिकांश

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विद्वान् बाँदा जिले के राजापुर को उनका जन्मस्थान मानते हैं। इनके पिता का नाम आत्माराम दुबे और माता का हुलसी बताया जाता है। कहा जाता है अभुक्तमूल नक्षत्र में पैदा होने के कारण माता-पिता ने इनका परित्याग कर दिया था। यह भी विश्वास किया जाता है कि पहले यह पत्नी के प्रति अत्यन्त आसक्त थे और उसकी फटकार-तिरस्कार ने इनके जीवन का मार्ग बदल दिया। कुछ भी हो इतना सत्य है कि तुलसीदास जी का जीवन कठिन बाह्य परिस्थितियों और संघर्षों में बीता था जिसके कारण उनका अनुभव बहुत बढ़ा-चढ़ा था। गोस्वामी जी की निधन-तिथि श्रावण शुक्ला सप्तमी संवत् १६८० मानी जाती है।

गोस्वामी जी के प्रामाणिक ग्रंथों की संख्या १२ है जिनमें रामचरितमानस, विनयपत्रिका, दोहावली, गीतावली और कवितावली मुख्य हैं। मानस और विनयपत्रिका उनकी सर्वोत्कृष्ट और प्रौढ़तम रचनाएँ हैं।

गोस्वामी जी रामभक्ति का आदर्श लेकर सामने आए थे। उनकी भक्ति 'संयुत विरति विवेक' है। उनका मत हृदयवाद और बुद्धिवाद का सामञ्जस्य है। सच्चे तत्व-ज्ञानियों ने ज्ञान, कर्म और भक्ति के समन्वय को ही आध्यात्मिक विकास का उचित मार्ग बताया है। तुलसीदास समन्वयवादी थे अतः उन्होंने राम और कृष्ण में अभेद स्थापित किया और शंकर-भक्ति को रामभक्ति का एक आवश्यक अंग मानकर वैष्णवों और शैवों के पारस्परिक झगड़े शान्त करने का प्रयत्न किया। उनके अनुसार भक्त अपने साधना-पथ पर अग्रसर होता हुआ लोभ, मोह आदि का समूल उन्मूलन कर एक ऐसी स्थिति में पहुँच जाता है जहाँ उसमें और उसके आराध्य में कोई अन्तर नहीं रह जाता—यही साधना का चरमोत्कर्ष है।

तुलसीदास ने यद्यपि स्वान्तःसुखाय काव्य रचना की थी किन्तु उनकी दृष्टि व्यक्तिगत साधना के अतिरिक्त लोकपक्ष पर थी। इसी से

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वे मर्यादा पुरुषोत्तम के चरित्र को लेकर आगे चले और उसमें 'लोक-रक्षा के अनुकूल जीवन की और-और प्रवृत्तियों का भी उन्होंने उत्कर्ष दिखाया और अनुरंजन किया।' लोकपीड़कों के दमन का वर्णन गोस्वामी जी ने बड़े उत्साह से किया है। रावण राम का व्यक्तिगत शत्रु नहीं था, वह लोक पीड़क होने के नाते ही उनका शत्रु था इसीलिए उन्होंने 'राक्षस हीन करौं महि' का 'भुज उठाय प्रण' किया था। राम के हर कार्य का लोकव्यापी प्रभाव होता है। गोस्वामी जी के राम निराकार ब्रह्म हैं—"व्यापक अकल अनीह अज निर्गुण नाम न रूप।" यही सर्वदेशीय और निराकार राम भक्त और लोक कल्याण के लिए एकदेशीय और साकार हो जाते हैं। 'भक्त उनके पालक भाव की ओर अधिक आकर्षित होता है इसलिए उन्होंने विष्णु के साथ अपने आराध्य का तादात्म्य बताया है।' तुलसी का हर पात्र एक आदर्श सामने रखता है। चरित्र-चित्रण में गोस्वामी जी जितने सफल हुए हैं उतना हिन्दी का कोई दूसरा कवि नहीं हुआ। उनके हर पात्र का अपना व्यक्तित्व है, अपनी विशेषताएँ हैं। तुलसी का प्रबन्ध-सौष्ठव भी बेजोड़ है। उनकी हर पंक्ति इस बात का प्रमाण है कि वे मनोविज्ञान के अद्वितीय पंडित और बेजोड़ कलाकार थे। शुक्ल जी ने एक स्थान पर लिखा है:—'जी न चाहने पर भी विवश होकर यह कहना पड़ता है कि गोस्वामी जी को छोड़ हिन्दी के और किसी कवि में वह प्रबन्ध-पटुता नहीं जो महाकाव्य की रचना के लिए आवश्यक है।'

विनयपत्रिका गोस्वामीजी की प्रौढ़तम रचना है। उसमें हमें एक विह्वलहृदय दीन भक्त का सच्चा स्वरूप मिलता है जिसने अपने आराध्य के समक्ष अखण्ड आत्मविश्वास के साथ पूर्ण आत्मसमर्पण कर दिया है। इन पदों की सरल हृदयग्राही वाणी हर भावुक को आकृष्ट करने में समर्थ है। विनयपत्रिका में भक्त तुलसी के मन के प्रत्येक भाव का प्रत्यक्षीकरण हो जाता है, उसके एक-एक पद में उन्होंने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अपना हृदय खोलकर रख दिया है। उनका यह रूप हमें आत्मविभोर कर देता है।

गोस्वामीजी ने अवधी और ब्रज दोनों भाषाओं का प्रयोग किया और दोनों में उन्हें समान सफलता मिली—दोनों पर उनका समान अधिकार है। सूर की ब्रज और जायसी की अवधी में संस्कृत का समावेश कर उन्होंने उन्हें और प्रौढ़ तथा साहित्यिक बना दिया। उनके ग्रन्थों में विभिन्न छन्दों का प्रयोग पाया जाता है। तुलसी का शब्दकोष जितना विस्तृत है किसी दूसरे कवि का नहीं। मानस का शब्द-चयन और शैली ऐसी है कि बड़े-बड़े तत्वज्ञानी और मात्र अक्षर-ज्ञान रखने वाले व्यक्ति सभी उसे अपने-अपने अनुकूल पाते हैं। थोड़े से शब्दों में अनेक भाव भर देने में भी तुलसी-सी पटुता अन्यत्र नहीं दिखाई पड़ती।

गोस्वामी जी के मानस की लोकप्रियता का सबसे बड़ा कारण यह है कि अपने विस्तृत ज्ञान और सारग्राहिणी प्रवृत्ति के कारण उन्होंने 'नानापुराणनिगमागम' का सार उसमें कूट-कूट कर भर दिया है। उन्होंने ऐसे तत्व सामने रखे जो बाद के धर्म-प्रवर्त्तकों के सिद्धान्तों को भी अपने में समेटे अद्यावधि जाज्वल्यमान हैं और काल की कठोरता का मज़ाक उड़ाती हुई उनकी लोकप्रियता दिन-दिन बढ़ती जा रही है।

तुलसी-सा बहुव्यक्तित्व-सम्पन्न, सचेतन और तेजस्वी कलाकार हिन्दी साहित्य में दूसरा नहीं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तुलसीदास

प्रथम दर्शन

(पुष्पवाटिका वर्णन)

समय जानि गुरु आयसु पाई। लेन प्रसून चले दोउ भाई।
भूप बागु वर देखेउ जाई। जहँ बसन्त रितु रही लोभाई॥
लागे बिटप मनोहर नाना। बरन बरन बर बेलि बिताना॥
नव पल्लव फल सुमन सुहाये। निज संपति सुररूख लजाये॥
चातक कोकिल कीर चकोरा। कूजत बिहग नटत कल मोरा॥
मध्य बाग सरु सोह सुहावा। मनि सोपान बिचित्र बनावा॥
बिमल सलिलु सरसिज बहुरंगा। जलखग कूजत गुंजत भृंगा॥
दोहा—बागु तड़ागु बिलोकि प्रभु, हरषे बन्धु समेत।
परमरम्य आराम यह, जो रामहि सुख देत॥
चहुँदिसि चितइ पूछि मालीगन। लगे लेन दल फूल मुदित मन॥
तेहि अवसर सीता तहँ आई। गिरिजा पूजन जननि पठाई॥
संग सखी सब सुभग सयानी। गावहिं गीत मनोहर बानी॥
सरसमीप गिरिजा गृह सोहा। बरनि न जाइ देखि मन मोहा॥
मज्जन करि सर सखिन्ह समेता। गई मुदित मन गौरि निकेता॥
पूजा कीन्हि अधिक अनुरागा। निज अनुरूप सुभग बर मांगा॥
एक सखी सिय संगु बिहाई। गई रही देखन फुलवाई॥
तेइ दोउ बन्धु बिलोके जाई। प्रेमबिबस सीता पहिं आई॥
दोहा—तासु दसा देखी सखिन्ह, पुलक गात जलु नयन।
कह कारनु निज हरष कर, पूछहिं सब मृदु बयन॥
देखन बागु कुअँर दुइ आये। बय किसोर सब भाँति सुहाये॥
स्याम गौर किमि कहउँ बखानी। गिरा अनयन नयन बिनु बानी॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सुनि हरषीं सब सखी सयानी। सियहिय अति उतकंठा जानी॥
एक कहह नृप सुत तेइ आली। सुने जे मुनि संग आये काली॥
जिन्ह निज रूप मोहनी डारी। कीन्हें स्वबस नगर नर नारी॥
बरनत छबि जहँ तहँ सब लोगू। अवसि देखियहि देखन जोगू॥
तासु बचन अति सियहि सुहाने। दरस लागि लोचन अकुलाने॥
चली अग्र करि प्रिय सखि सोई। प्रीति पुरातनि लखइ न कोई॥
दोहा—सुमिरि सीय नारद बचन, उपजी प्रीति पुनीत।
चकित बिलोकति सकल दिसि, जनु सिसु मृगी सभीत॥
कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लषन सन रामु हृदय गुनि॥
मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा बिस्व बिजय कहँ कीन्ही॥
अस कहिफिरि चितये तेहि ओरा। सियमुख ससि भये नयन चकोरा।
भये बिलोचन चारु अचंचल। मनहुँ सकुचि निमि तजे दृगंचल॥
देखि सीय सोभा सुखु पावा। हृदय सराहत बचनु न आवा॥
जनु बिरंचि सब निज निपुनाई। बिरचि बिस्व कहँ प्रगटि देखाई॥
सुन्दरता कहँ सुन्दर करई। छबि गृह दीपसिखा जनु बरई॥
सब उपमा कबि रहे जुठारी। केहि पटतरउँ बिदेह कुमारी॥
दोहा—सिय सोभा हिय बरनि प्रभु, आपनि दसा बिचारि॥
बोले सुचि मन अनुज सन, बचन समय अनुहार॥
तात जनक तनया यह सोई। धनुषजग्य जेहि कारन होई॥
पूजन गौरि सखी लेइ आई। करत प्रकासु फिरइ फुलवाई॥
जासु बिलोकि अलौकिक सोभा। सहज पुनीत मोर मनु छोभा॥
सो सबु कारन जान बिधाता। फरकहिं सुभग अंग सुनु भ्राता॥
रघुवंसिन्ह कर सहज सुभाऊ। मनु कुपंथ पगु धरैं न काऊ॥
मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी। जेहि सपनेहुँ परनारि न हेरी॥
जिन्ह कै लहहिं न रिपुरन पीठी। नहिं लावहिं परतिय मन डीठी॥
मंगन लहहिं न जिन्ह कै नाहीं। ते नरवर थोरे जग माहीं॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दोहा—करत बतकहीं अनुज सन, मन सिय रूप लुभान ॥
मुख सरोज मकरंद छबि, करव मधुप इव पान ॥
चितवत चकित चहूँदिस सीता। कहँ गये नृपकिसोर मन चीता ॥
जहँ बिलोकि मृग सावक नयनी। जनु तहँ बरिस कमल सित श्रेनी ॥
लता ओट तब सखिन लखाये। स्यामल गौर किसोर सुहाये ।
देखि रूप लोचन ललचाने। हरषे जनु निज निधि पहिचाने ॥
थके नयन रघुपति छबि देखी। पलकन्हिहू परिहरीं निमेखी ॥
अधिक सनेह देह भइ भोरी। सरद ससिहिं जनु चितव चकोरी ॥
लोचन मग रामहिं उर आनी। दीन्हे पलक कपाट सयानी ॥
जब सिय सखिन्ह प्रेमबस जानी। कहि न सकहिं कछु मन सकुचानी ॥
दोहा—लता भवन ते प्रगट भये, तेहि अवसर दोउ भाइ।
निकसे जनु जुग बिमल बिधु, जलद पटल बिलगाइ ॥
सोभा सीवँ सुभग दोउ बीरा। नील पीत जलजात सरीरा ॥
मोर पंख सिर सोहत नीके। गुच्छा बिच बिच कुसुमकली के ॥
भाल तिलक सम बिंदु सुहाये। श्रवन सुभग भूषन छबि छाये ॥
बिकट चिबुक नासिका कपोला ! हास बिलास लेत मनु मोला ॥
मुख छबि कहि न जाइ मोहि पाहीं। जो बिलोकि बहु काम लजाहीं ॥
उर मनिमाल कंबु कल ग्रीवां। काम कलभ कर भुज बलसीवां ॥
सुमन समेत वाम कर दोना। साँवर कुअँर सखी सुठि लोना ॥
दोहा—केहरि कटि पट पीत धर, सुखमा सील निधान।
देखि भानुकुल भूषनहिं, बिसरा सखिन्ह अपान ॥
धरि धीरज एक आलि सयानी। सीता सन बोली गहि पानी ॥
बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू। भूप किसोर देखि किन लेहू ॥
सकुचि सीय तब नयन उघारे। सनमुख दोउ रघुसिंह निहारे ॥
नखसिख देखि राम के सोभा। सुमिरि पितापनु मन अति छोभा॥
परबस सखिन्ह लखी जब सीता। भई गहरु सब कहहिं सभीता ॥
पुनि आउब एहि बिरियाँ काली। असकहि मन बिहँसी एक आली॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गूढ़ गिरा सुनि सिय सकुचानी । भयेउ बिलम्ब मातु भय मानी ॥
धरि बड़ि धीर राम उर आने । फिरि आपनपौ पितुबस जाने ॥
दोहा—देखन मिस मृग बिहँग तरु, फिरइ बहोरि बहोरि ।
निरखि निरखि रघुबीर छबि, बाढ़ई प्रीति न थोरि ॥
(रामचरित मानस से)

विजय-रथ

रावनु रथी बिरथ रघुबीरा । देख बिभीषन भयउ अधीरा ॥
अधिक प्रीति मन भा संदेहा । बंदि चरन कह सहित सनेहा ॥
नाथ न रथु नहिं तन पद त्राना । केहि बिधि जितब बीर बलवाना ॥
सुनहु सखा कह कृपानिधाना । जेहिं जय होइ सो स्यंदन आना ॥
सौरज धीरज तेहिं रथ चाका । सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका ॥
बल बिबेक दम परहित घोरे । छमा कृपा समता रजु जोरे ॥
ईस भजनु सारथी सुजाना । बिरति चर्म संतोष कृपाना ॥
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा । बर बिग्यान कठिन कोदंडा ॥
अमल अचल मन त्रोन समाना । सम जम नियम सिलीमुख नाना ॥
कवच अभेद बिप्र गुरपूजा । एहि सम बिजय उपाय न दूजा ॥
महा अजय संसार रिपु, जीति सकइ सो बीर ।
जाके अस रथ होइ दृढ़, सुनहु सखा मति धीर ॥

रामराज

बरनाश्रम निज निज धरम, निरत बेद पथ लोग ।
चलहिं सदा पावहि सुखहिं, नहिं भय सोक न रोग ॥
दैहिक दैविक भौतिक तापा । रामराज नहिं काहुहि व्यापा ॥
सब नर करहिं परस्पर प्रीती । चलहिं स्वधरम निरत श्रुति नीति ॥
चारिहुँ चरन धरम जगमाहीं । पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं ॥
राम भगति रत नर अरु नारी । सकल परमगति के अधिकारी ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अलप मृत्यु नहिं कवनिउ पीरा। सब सुन्दर सब बिरुज सरीरा ॥
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना ॥
सब निर्दंभ धरमरत पुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी ॥
सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी। सब कृतग्य नहिं कपट सयानी ॥

रामराज नभगेस सुनु, सचराचर जग माहिं ॥
काल कर्म सुभाव गुन, कृत दुख काहुहि नाहिं ॥

भूमि सप्त सागर मेखला। एक भूप रघुपति कोसला ॥
भुअन अनेक रोम प्रति जासू। एह प्रभुता कछु बहुत न तासू ॥
सो महिमा समुझत प्रभु केरी। एह बरनत हीनता घनेरी ॥
सो महिमा खगेस जिन्ह जानी। फिर एहि चरित तिन्हहुँ रतिमानी ॥
सोउ जाने कर फल यह लीला। कहहिं महा मुनिवर दम सीला ॥
रामराज कर सुख संपदा। बरनि न सकइ फनीस सारदा ॥
सब उदार सब पर उपकारी। बिप्र चरन सेवक नरनारी ॥
एक नारि ब्रत रत सब झारी। ते मन बच क्रम पति हितकारी ॥

दंड जतिन्ह कर भेद जहँ, नर्तक नृत्य समाज।
जीतहु मनहिं सुनिय अस, रामचन्द्र के राज ॥

फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन। रहहिं एक सँग गज पंचानन ॥
खगमृग सहज बयरु बिसराई। सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई ॥
कूजहिं खग मृग नाना बृंदा। अभय चरहिं बन करहिं अनन्दा ॥
सीतल सुरभि पवन बह मन्दा। गुंजत अलि ले चलि मकरन्दा ॥
लता बिटप माँगे मधु चवहीं। मन भावतो धेनु पय स्रवहीं ॥
ससि सम्पन्न सदा रह धरनी। त्रेता भइ कृतजुग कै करनी ॥
प्रगटी गिरिन्ह बिबिधमनि खानी। जगदातमा भूप जग जानी ॥
सरिता सकल वहहिं बर बारी। सीतल अमल स्वाद सुखकारी ॥
सागर निज मरजादा रहहीं। डारहिं रत्न तटन्हि नर लइहीं ॥
सरसिज संकुल सकल तड़ागा। अति प्रसन्न दस दसा बिभागा ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बिधु महि पूर मयखन्हि, रवि तप जेतनेहि काज।
माँगे बारिद देहिं जल, रामचन्द्र के राज॥

(२१)

सन्त के लक्षण

सन्त असंतन्हि कै अस करनी। जिमि कुठार चन्दन आचरनी॥
काटइ परसु मलय सुनु भाई। निज गुन देह सुगंधि बसाई॥
ता तें सुर सीसन्ह चढ़त, जग बल्लभ श्रीखंड।
अनल दाहि पीटत घनहिं, परसु बदन यह दण्ड॥
बिषय अलंपट सील गुनाकर। पर दुख दुख सुख सुख देखे पर॥
सम अभूत रिपु बिमद बिरागी। लोभामरष हरष भय त्यागी॥
कोमल चित दीनन्ह पर दाया। मन बच क्रम मम भगति अमाया॥
सबहिं मानप्रद आपु अमानी। भरत प्रान सम मम ते प्रानी॥
बिगत काम मम नाम परायन। सांति बिरति बिनती मुदितायन॥
सीतलता सरलता मयत्री। द्विज पद प्रीति धर्म जनयत्री॥
ए सब लच्छन बसहिं उर। जानेहु तात सन्त सन्तत फुर॥
सम दम नियम नीति नहिं डोलहिं। परुष बचन कबहूँ नहिं बोलहिं॥
निंदा अस्तुति उभय सम, ममता मम पदकंज।
ते सज्जन मम प्रान प्रिय, गुन मन्दिर सुख पुंज॥

(२२)

असन्त के लक्षण

सुनहु असन्तन केर सुभाऊ। भूलेहुँ संगति करिअ न काऊ॥
तिन्ह कर संग सदा दुखदाई। जिमि कपिलहिं घाले हरहाई॥
खलन्ह हृदय अति ताप बिसेषी। जरहिं सदा पर सम्पति देखी॥
जहँ कहुँ निन्दा सुनहिं पराई। हरषहिं मनहु परी निधि पाई॥
काम क्रोध मद लोभ परायन। निर्दय कपटी कुटिल मनायन॥
बयरु अकारन सब काहू सों। जो कर हित अनहित ताहू सों॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

झूठेइ लेना झूठेइ देना। झूठेइ भोजन झूठ चबेना ॥
बोलहिं मधुर बचन जिमि मोरा। खाहिं महा अहि हृदय कठोरा ॥
पर द्रोही पर दार रत, परधन पर अपवाद।
ते नर पाँवर पाप मय देह धरे मनुजाद ॥
लोभइ ओढ़न लोभइ डासन। सिस्नोदर पर जमपुर त्रासन ॥
काहू की जौं सुनहिं बड़ाई। स्वास लेहिं जनु जूड़ी आई ॥
जब काहू कै देखैं बिपती। सुखी भए मानहूँ जग नृपती ॥
स्वारथ रत परिवार बिरोधी। लंपट काम लोभ अति क्रोधी ॥
मातु पिता गुरु बिप्र न मानहिं। आपु गए अरु घालहि आनहिं ॥
करहिं मोह बस द्रोह परावा। सन्त संग हरिकथा न भावा ॥
अवगुन सिंधु मंदमति कामी। बेद बिदूषक परधन स्वामी ॥
बिप्रद्रोह परद्रोह बिसेषा। दंभ कपट जियँ धरें सुवेषा ॥
ऐसे अधम मनुज खल, कृतयुग त्रेता नाहिं।
द्वापर कछुक बृन्द बहु, होइहिं कलियुग माहिं ॥

वन-यात्रा

कागर कीर ज्यों भूषन चीर शरीर लस्यो तजि नीर ज्यों काई।
मातु पिता प्रिय लोग सबै, सनमानि सुभाय सनेह सगाई ॥
संग सुभामिनी भाइ भलो, दिन द्वै जनु औध हुते पहुनाई।
राजिव लोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाईं ॥
पुरतें निकसी रघुबीर बधू, धरि धीर दये मग में डग द्वै।
झलकी भरि भाल कनी जल की पुट सूखि गए मधुराधर वै ॥
फिरि बूझति हैं चलनो अब केतिक, पनकुटी करिहौ कित ह्वै।
तिय की लखि आतुरता पिय की, अँखियाँ अति चारु चलीं जलच्वै ॥
जल कौं गये लक्खन हैं लरिका, परिखौ पिय छाँह घरीक ह्वै ठाढ़े।
पोंछि पसेउ बयारि करौं, अरु पायँ पखारिहौं भूभुरि डाढ़े ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तुलसी, रघुबीर प्रिया-श्रम जानिकै बैठि बिलम्ब लौं कंटक काढ़े ।
जानकी नाह को नेह लख्यौ, पुलकी तनु बारि बिलोचन बाढ़े ॥
ठाढ़े हैं नौद्रुम डार गहे, धनु काँधे धरे, कर सायक लै ।
बिकटी भ्रकुटी बड़री अँखियाँ, अनमोल कपोलन की छवि है ॥
तुलसी, असि सूरति आनि हिये, जड़ डारि धौं प्रान निछावर कै ।
श्रम-सीकर साँवरि देह लसै, मनो रारि महातम तारक मैं ॥
बनिता बनी स्यामल गौर के बीच, बिलोकहु री सखी, मोहिं सी ह्वै ।
मग जोग न, कोमल क्यों चलिहैं, सकुचात मही पदपंकज छ्वै ॥
तुलसी, सुनि ग्राम-बधू बिथकी, पुलकीं तन औ चले लोचन च्वै ।
सब भाँति मनोहर मोहन रूप, अनूप हैं भूप के बालक द्वै ॥
साँवरे गोरे सलोने सुभाय, मनोहरता जित मैन लियौ है ।
बान कमान निषंग कसै सिर सोहैं जटा, मुनि बेष कियो है ॥
संग लिये बिधु बैनी बधू रति को जेहि रंचक रूप दियो है ।
पायन तौ पनहीं न, पयादेहि क्यों चलिहैं ? सकुचात हियो है ॥
रानी मैं जानी अजानी महा, पवि पावन हूँ तै कठोर हियौ है ।
राजहु काज अकाज न जान्यो, कह्यो तिय को जिन कान कियो है ॥
ऐसी मनोहर मूरत ये, बिछुरे कैसे प्रीतम लोग जियो है ?
आँखिन में, सखि, राखिबे जोग, इन्हें किमि कै बनबास दियौ है ॥
सीस जटा उर बाहु बिसाल, बिलोचनलाल तिरीछी सी भौंहैं ।
तून सरासन बान धरे, तुलसी, बन मारग में सुठि सोहैं ॥
सादर बारहि बार सुभाय चितै तुम त्यों हमरो मन मोहैं ।
पूछति ग्राम बधू सिय सों कहौ साँवरे से, सखि, रावरे को हैं ?
सुनि सुन्दर बैन सुधारस साने सयानी हैं जानकी जानी भली ।
तिरछे करि नैन दै सैन तिन्हैं समुझाइ कछू मुसुकाइ चली ॥
तुलसी, तेहि औसर सोहैं सबै अवलोकति लोचन लाहु अली ।
अनुराग तड़ाग में भानु उदै बिगसीं मनौं मंजुल कंज कली ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

धरि धीर कहैं चलु देखिय जाइ जहाँ सजनी रजनी रहिहैं।
कहि है जग पोच, न सोच कछू फल लोचन आपन तौ लहिहैं॥
सुख पाइहैं कान सुने बतियाँ, कल आपुस में कछु पै कहिहैं।
तुलसी अति प्रेम लगीं पलकैं, पुलकीं लखि राम हिये महिहैं॥
पद कोमल, स्यामल गौर कलेवर, राजत कोटि मनोज लजाए।
कर बान सरासन, सीस जटा, सरसीरुह लोचन सोन सुहाए॥
जिन देखे, सत भायहु तें तुलसी तिन सौं मन फेरि न पाए।
यहि मारग आजु किसोर बधू अरुबन्धु समेत सुभाय सिधाए॥
मुख पंकज, कंज बिलोचन मंजु, मनोज सरासन सी बनी भौंहैं।
कमनीय कलेवर, कोमल, स्यामल गौर किसोर, जटा सिर सौंहैं॥
तुलसी कटि तून, धरे धनु बान, अचानक दीठि परी तिरछौंहैं।
केहि भाँति कहौं, सजनी! तोहिसों मृदुमूरति द्वै निबसी मन मोहैं॥
प्रेम सों पीछे तिरीछे प्रियाहि चितै चितु दै, जुचलै चित चोरे।
स्याम शरीर पसेऊ लसै, हुलसै तुलसी छबि सो मन मोरे॥
लोचन लोल, चलैं, भृकुटी कल काम कमानहु सो तृन तोरे।
राजत राम कुरंग के संग, निषंग कसे, धनु सों सर जोरे॥
सर चारिक चारु बनाइ कसे कटि, पान सरासन सायक लै।
बन खेलत राम फिरैं मृगया, तुलसी छबि सो बरनै किमि कै॥
अवलोकि अलौकिक रूप मृगी मृग चौंकि चकैं चितवैं चित दै।
न डगैं न भगैं जिय जानि सिलीमुख पंच धरे रति नायक है॥

लंका-दहन

बसन बटोरि बोरि बोरि तेल तमीचर,
खोरि खोरि धाइ आइ बाँधत लंगूर हैं।
तैसौ कपि कौतुकी डरात ढीलौ गात कै कै,
लात कै अघात सहै, जी मैं कहै कर हैं॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बाल किलकारी कैं कैं, तारी दै दै गारी देत,
पाछे लागे बाजत निसान ढोल तर हैं।
बालधी बढ़न लागी, ठौर ठौर दीन्हीं आगी,
बिंध की दवारि, कैधौं कोटि सत सूर हैं॥
बालधी बिसाल बिकराल ज्वाल जाल, मानो,
लङ्क लीलिबे को काल रसना पसारी है।
कैधौं व्योमबीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु,
बीररस बीर तरवारि सी उघारी है॥
तुलसी, सुरेस चाप, कैधौं दामिनी कलाप,
कैधौं चलौ मेरुतें कृसानुसरि भारी है।
देखे जातुधान जातुधानी अकुलानी कहैं,
कानन उजार्यौ, अब नगर प्रजारी है॥
लागि-लागि आगि, भागि भागि चले जहाँ तहाँ,
धीय को न माय, बाप पूत न सँभारहीं।
छूटे बार, बसन उघारे, धूम धुंध अंध,
कहैं बार बूढ़े बारि बारि बार बार हीं।
हय हिहिनात भागे जात, घहरात गज,
भारी भीर ठेलि पेलि रौंदि खौंदि डारहीं।
नाम लै चिलात, बिललात अकुलात अति
तात तात तौंसियत, झौंसियत झारहीं॥
बीथिका बजार प्रति, अटनि अगार प्रति,
पँवरि पगार प्रति, बानर बिलोकिये।
अर्ध, ऊर्ध बानर, बिदिसि, दिसि बानर है,
मानहुँ रह्यो है भरि बानर तिलोकिये॥
मूँदे आँखि हीय में, उघारे आँखि आगे ठाढ़ो,
धाइ जाइ जहाँ तहाँ, और कोई को किये।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

लेहु अब लेहु, तब कोऊ न सिखाओ मानो,
सोई सतराइ जाइ जाहि जाहि रोकिये ॥
(कवितावली से)

कौशल्या व्यथा

जब जब भवन बिलोकति सूनो।
तब तब विकल होति कौसल्या दिन दिन प्रति दुख दूनो ॥
सुमिरन बाल विनोद राम के सुन्दर मुनि मन हारी।
होत हृदय अति सूल समुझि पद पंकज अजिर बिहारी ॥
को अब प्रात कलेऊ माँगत रूठि चलैगो माई।
स्याम तामरस नैन स्रवत जल काहि लेंउ उर लाई ॥
जीवौं तौ विपति सहौं निसिबासर मरौं तो मन पछितायो।
चलत विपन भरि नयन राम को वदन न देखन पायो।
तुलसीदास यह दुसह दसा अति दारुन विरह घनेरो।
दूरि करै को भूरि कृपा बिनु सोक जनित रुज मेरो ॥
जननी निरखति बान धनुहियाँ।
बार बार उर नैननि लावति प्रभुजू की ललित पनहियाँ ॥
कबहुँ प्रथम ज्यों जाइ जगावति कहि प्रिय वचन सवारे।
उठहु तात! बलि मातु बदन पर, अनुज सखा सब द्वारे ॥
कबहुँ कहति यों बड़ी बार भइ, जाहु भूप पहँ भैया।
बन्धु बोलि जेंइय जो भावै गई निछावरि मैया ॥
कबहुँ समुझि बन गवन राम कौ रहि चकि चित्र लिखी सी।
तुलसिदास वह समय कहेतैं लागति प्रीति लिखी सी ॥

भरत की ग्लानि

जो पै हौं मातु मते महँ ह्वैहौं।
तौ जननी, जग में या मुख की कहाँ कालिमा ध्वैहौं ?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

क्यों हौं आजु होत सुचि सपथनि ? कौन मानिहै साँची ?
महिमा मृगी कौन सुकृती की खल बच बिसिषन बाँची ?
गहि न जाति रसना काहू की, कहौ जाहि जोइ सूझै।
दीनबन्धु कारुन्य सिन्धु बिनु कौन हिये की बूझै ?
तुलसी, राम बियोग बिषम बिष बिकल नारि नर भारी।
भरत सनेहसुधा सींचे सब भये तेहि समय सुखारी ॥

चित्रकूट

सब दिन चित्रकूट नीकौ लागत।
बरसा रितु प्रवेस बिसेस गिरि
देखत मन अनुरागत ॥
चहुँ दिसि बन संपन्न, बिहंग मृग
बोलत सोभा पावत।
जनु सुनरेस देस पुर प्रमुदित
प्रजा सकल सुख छावत ॥
सोहत स्याम जलद मृदु घोरत।
धातु रँगमगे सृंगनि।
मनहुँ आदि अंभोज बिराजत
सेवित सुर मुनि भृंगनि ॥
सिखर परस घन घनहि मिलति बग
पाँति, सो छबि कबि बरनी।
आदि बराह बिहरि बारिधि मनो
उठ्यो है दसन धरि धरनी ॥
जल जुत बिमल सिलनि झलकत
नभ बन प्रतिबिंब तरंग।
मानहुँ जग रचना बिचित्र बिलसति
बिराट अंग अंग ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मंदाकिनिहिं मिलत झरना झरि
झरि भरि भरि जल आछे।
तुलसी, सकल सुकृत सुख लागे
मानो राम भगति के पाछे॥

—(गीतावली)

भक्ति, आचरण और ज्ञान

जाके प्रिय न राम वैदेही।
तजिये ताहि कोटि वैरी सम जद्यपि परम सनेही॥
नाते नेह रामहिं के मनियत सुहृदय सुसेव्य जहाँ लौं।
अंजन कहा आँखि जेहि फूटी वहुतक कहौं कहाँ लौ॥
तज्यो पिता प्रहलाद विभीषन बन्धु भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो कंत व्रज बनितन भये जग मंगलकारी॥
तुलसो सो सब भाँति परम हित पूज्य प्रानते प्यारो।
जाते होय सनेह राम ते इतनोइ मतो हमारो॥
कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।
श्री रघुनाथ कृपालु कृपा से सन्त सुभाउ गहौंगो॥
यथा लाभ सन्तोष सदा काहूसों कछु न चहौंगो।
परहित निरत निरंतर मन क्रम वचन नेम निबहौंगो॥
परुष वचन अति दुसह श्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो।
विगत मान सम सीतल मन पर गुन औगुन न कहौंगो॥
परिहरि देह जनित चिन्ता दुख सुख सम बुद्धि सहौंगो॥
तुलसीदास प्रभु यहि पथ गहि अविचल हरिभक्ति लहौंगो॥
केशव कहि न जाइ का कहिए।
देखत तव रचना विचित्र अति समुझि मनहिं मन रहिए॥
सून्य भीति पर चित्र रंग नहिं तन बिनु लिखा चितेरे।
धोए मिटइ न मरइ भीति दुख पाये यहि तनु हेरे॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रविकर तीर बसे अति दारुण मकर रूप तेहि माहीं ॥
बदनहीन सो ग्रसे चराचर पान करन जे जाहीं ॥
कोऊ कह सत्य झूठ, कह कोऊ जुगल प्रबल करि माने ।
तुलसीदास परिहरे तीनि भ्रम सो आपन पहिचाने ॥
(विनय पत्रिका से)

दोहे

राम नाम मनि दीप धरु, जीह देहरी द्वार ।
तुलसी भीतरे बाहिरो, जो चाहत उजियार ॥
एक भरोसो एक बल, एक आस विश्वास ।
स्वाति सलिल रघुनाथ यश चातक तुलसीदास ॥
होइ अधीन याचे नहीं, सीस नाइ नहिं लेइ ।
ऐसे मानी माँगनहिं, को बारिद बिनु देइ ॥
मान राखिबो माँगिबो, पिय सों सहज सनेहु ।
तुलसी तीनों तब फबै, जब चातक मत लेहु ॥
तुलसी 'रा' के कहत ही, निकसत पाप पहार ।
फिरि भीतर आवत नहीं, देत मकार किवार ॥
तुलसी पावस के समै, धरी कोकिला मौन ।
अब तो दादुर बोलि हैं, हमें पूछिहै कौन ॥
जहाँ राम तहँ काम नहिं, जहाँ काम नहिं राम ।
तुलसी कबहूँ होत नहिं, रवि रजनी एक ठाम ॥
(दोहावली)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

५

मीराबाई

हिन्दी काव्य की कोकिला 'दर्द दिवानी' मीरा ने अपने प्रणयपात्र गिरिधर गोपाल के उत्कट प्रेम में मग्न होकर अपने आकुल अन्तर के जिन भावों को वाणी दी, वे पद हिंन्दी-साहित्य के जगमगाते रत्न हो गए हैं। मीरा के कृष्ण प्रेम में जो तल्लीनता है, कृष्ण के प्रति उनका जैसा अनन्य भाव है; उनमें स्थायी रूप से मिलने वाला जो 'दीवानापन' है—वह अन्यत्र नहीं मिलता। मीरा ने कृष्ण को पति-रूप में वरण किया था। यद्यपि कबीर और मीरा की भावभूमि एक ही थी और कबीर भी अपने को 'राम की बहुरिया' समझते हैं, तथापि परिस्थिति-भेद के कारण उनमें अनुभूति की वह गहराई नहीं दीख पड़ती जो मीरा में है।

मीराबाई का जन्म जोधपुर राज्य की मेड़ता नामक जागीर में चौकड़ी में हुआ था। इनका जन्म सं० १५५५ और १५६० के बीच किसी समय हुआ माना जाता है। मीरा का विवाह उदयपुर के राणा साँगा के पुत्र भोजराज के साथ सं० १५७३ में हुआ था। लेकिन मीरा बचपन से ही नन्दगोपाल को अपना पति स्वीकार कर चुकी थीं। इसलिए वे इस बंधन को लोक सम्मत रूप में स्वीकार न कर सकीं। दस वर्ष बाद विधवा हो जाने पर भी उनकी स्थिति में कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ा। इनका स्वर्गवास सं० १६०२ में हुआ माना जाता है पर भारतेन्दु बाबू ने १६२० और १६३० के बीच किसी समय माना है।

मीरा निर्भीक और निडर होकर भक्तों और संतों की संगति करती थीं उनके देवर राणा विक्रमादित्य ने उन्हें जितना ही इस ओर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

से हटाने का प्रयत्न किया उतना ही कृष्ण के प्रति उनका आकर्षण दिन-दिन बढ़ता गया। राणा ने उनकी हत्या की भी चेष्टा की लेकिन मीरा का बाल बाँका न कर सके। मीरा का कहना तो यह था कि—"राजा रूठे नगरी राखै, हरि रूठ्याँ कँह जाणाँ।" समाज और परिवार के अनुदार व्यवहार से तंग आकर एक दिन उन्होंने मेवाड़ छोड़ दिया—'छोड़ी कुल की लाज साहिब तेरे कारणों।' संत रैदास मीराबाई के गुरु थे—"मीरा ने गोव्यन्द मिल्याजी गुरु मिल्या रैदास।"

मीराबाई का आदर्श व्रजगोपियाँ थीं। वे अपने को ललिता का अवतार समझतीं थीं। सूरदास यद्यपि कृष्ण के प्रति वात्सल्य और श्रृंगार में पूरी तरह रँगे हुए थे। तथापि उनमें वह स्थायी पीड़ा नहीं दीख पड़ती जो मीरा में है। गोपियों के हृदय में जो 'त्रिभंगीलाल' टेढ़े होकर समा गए थे, वे ही अपनी सर्वांगीण टेढ़ाई के साथ मीरा के मन-प्राण में समाए हुए हैं। कृष्ण से पृथक उनका कोई व्यक्तित्व नहीं—वे सम्पूर्णतः कृष्णमय हो गईं हैं। उनके नन्दगोपाल बिल्कुल उनके अपने हैं—उनके किसी शब्द में निर्वैयक्तिकता की झलक नहीं मिलेगी।

मीरा की साधना ने उन्हें भावना की उस भूमि पर लेजाकर खड़ा कर दिया था जहाँ सामान्य वाणी और कविता में अभेद स्थापित हो जाता है। मीरा के पास अपने भाव-प्रवण आकुल हृदय की कसक के अतिरिक्त कहने को और था ही क्या?—उस कसक की तीव्रता समझने के लिए सहृदयता और मर्मज्ञता की आवश्यकता है।

कृष्ण के साथ मीरा की युग-युग की प्रीति है। कभी वह स्वकीया-भाव से 'बाँह गहे की लाज' का स्मरण करातीं हैं तो कहीं परकीया-भाव से और ईर्ष्यावश उपालम्भ भी देती हैं। लेकिन इन उलाहनों में मान नहीं क्योंकि वे तो अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व का समर्पण अपने प्रियतम के चरणों पर कर चुकीं हैं। उनमें मिलन—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वियोग की गहरी संवेदना है और अतृप्तप्रेम की करुणा साकार हो उठी है। उनके प्रत्येक शब्द में दैन्य और विवशता है—"अब के जिय टाला दे जावो, सिर पर राखूँ विराज. म्हें तो जनम-जनम की दासी थें म्हाँ का सरताज।" मीरा के दीवानेपन का, दर्द का और विरह की पीड़ा का कोई इलाज नहीं—पर यह बिल्कुल असाध्य भी नहीं—

दरद की मारी बन-बन डोलूँ वैद मिल्या नहिं कोइ।
मीरा की प्रभु पीर मिटैगी, जब वैद साँवलिया होइ॥

लेकिन जब आन्तरिक स्फूर्ति जागती है तो वे अपने प्रियतम से अत्यन्त नैकट्य का अनुभव करतीं हैं—और सारी प्रकृति उनके साथ प्रसन्न हो उठती है—'सहेलियाँ साजण घर आया हो; बहोत दिना की जोवति विरहिण पिव पाया हो।'

मीरा की भाषा का स्वरूप राजस्थानी और ब्रज के मिश्रण से बना है। उनमें पद-लालित्य और काव्य-उपकरण जुटाने का प्रयास कहीं नहीं मिलेगा। वस्तुतः वह न तो कवि थीं और न कवि बनना उनका उद्देश्य ही था। उनके विरह-विह्वल मनमें जो भाव उठे, उन्हें अत्यंत सीधे-सादे ढंग से उन्होंने व्यक्त कर दिया। भाषा और भाव का यह सीधापन हमारे हृदय को अनायास ही छू लेता है। यही कारण है कि उस युग में भी जब इस देश में संचार-साधनों का विकास नहीं हुआ था, मीरा के गीत देश के एक छोर से दूसरे छोर तक गूँज उठे थे और आज चार सौ वर्ष के बाद भी उनकी लोकप्रियता ज्यों की त्यों बनी हुई हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मीरा

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई ।
दूसरा न कोई साधो सकल लोक जोई ।।
भाई छोड्या बन्धु छोड्या छोड्या सगा सोई ।
साधु संग बैठ बैठ लोक लाज खोई ।।
भगत देख राजी हुई जगत देख रोई ।
असुवन जल सींचि सींचि प्रेम बेल-बोई ।।
दधि मथ घृत काढ़ लियो ड़ार दई छोई ।
राणा विष को प्यालो भेज्यो पीय मगन होई ।।
अब तो बात फैल गई जाणे सब कोई ।।
मीरा राम लगण लागी होणी होय सो होई ।।

श्री गिरधर आगे नाचूँगी ।
नाचि नाचि पिउरसिक रिझाऊँ, प्रेमी जन कूँ जाचूँगी ।।
प्रेम प्रीति की बाँधि घूंघरू, सूरत की कछनी काछूँगी ।
लोक-लाज कुल की मरजादा, यामें एक न राखूँगी ।।
पिव के पलंग जा पौढ़ूँगी, मीरा हरि रँग राचूँगी ।
मैं गिरधर रँग राती, सैंयां मैं गिरधर रँग राती ।
पचरँग चोला पहर सखी मैं, झिरमिट खेलन जाती ।
ओह झिरमिट मां मिल्यो सांवरो, खोल मिली तन गाती ।
जिनका पिया परदेस बसत है, लिख लिख भेजें पाती ।
मेरा पिया मेरे हीय बसत है, ना कहुँ आती जाती ।
चंदा जायग सूरज जायगा, जायगी धरणि अकासी ।
पवन पाणी दोनु ही जायंगे, अटल रहै अविनासी ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सुरत निरत का दिवला सँजोले, मनसा की करले बाती।
प्रेम हटी का तेल मंगा ले, जग रह्या दिन ते राती।
सतगुर मिलिया सांसा भाग्या सैन बताई सांची।
ना घर तेरा ना घर मेरा, गावे मीरा दासी।

घुंघरू बाँध मीरा नाची रे पग घूंघरू ॥
लोग कहैं मीरां हो गई बावरि,
सास कहै कुलनासी रे। पग०
जहर का प्याला राणा जी ने भेजा,
पीवत मीरां हाँसी रे॥ पग०
मैं तो अपने नारायण की,
हो गई आपहि दासी रे। पग०
मीरां के प्रभु गिरधर नागर,
बेग मिलो अविनासी रे॥

आली रे मेरे नैणा बाण पड़ी।
चित्त चढ़ी मेरे माधुरी मूरत, उर बिच आन अड़ी।
कब की ठाढ़ी पंथ निहारूं, अपने भवन खड़ी।
कैसे प्राण पिया बिनि राखूं, जीवन मूर जड़ी।
मीरां गिरधर हाथ बिकानी, लोग कहैं बिगड़ी।

दरस बिनि दूखण लागे नैन।
जब के तुम बिछुरे, प्रभु मोरे, कबहुँ न पायो चैन॥
सबद सुणत मेरी छतियाँ कांपै, मीठे मीठे बैन।
कल न परत पल हरि मग जोवत, भयी छमासी रैन॥
बिरह कथा कासू कहूँ सजनी, बह गयी करवत ऐन।
मीरां के प्रभु, कब रे मिलोगे, दुख मेटण सुख दैन॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हेरी मैं तो प्रेम दिवाणी, मेरा दरद न जाणे कोय।
सूली ऊपर सेज हमारी, किस विध सोणा होय॥
गगन मंडल पै सेज पिया की, किस विध मिलणा होय।
घायल की गति घायल जानै, की जिन लाई होय॥
जौहरी की गति जौहरी जानै, की जिन जौहर होय।
दरद की मारी बन बन डोलूं, बैद मिल्या नहिं कोय॥
मीरा की प्रभु पीर मिटेगी, जब वैद सँवलिया होय।

हेरी मैं तो दरद दिवाणी हो,
दरद न जाणै मेरो कोइ।
घाइल की गति घायल जाणैं, और न जाणै कोइ।
सूली ऊपर सेझ हमारी, सोवणा किस विध होइ॥
सुख संपति में सब मिलि आवै, दुख में वलभ न कोइ।
मीरां के प्रभु पीर मिटैगी बैद रमइयो होइ॥

घड़ी एक नहिं आवड़े, तुम दरसण बिन मोय।
तुम हो मेरे प्राण जी, कासूं जीवण होय॥
धान न भावै नींद न आवै, विरह सतावै मोय।
घायल सी घूमत फिरूं रे, मेरा दरद न जाणे कोय॥
दिवस तो खाय गमायो रे, रैण गमाई सोय।
प्राण गमायो झूरतां रे, नैण गमाई रोय॥
जो मैं ऐसा जाणती रे, प्रीति किये दुख होय।
नगर ढँढोरा फेरती रे, प्रीति करो मत कोय॥
पंथ निहारूँ डगर बुहारूँ, ऊबी मारग जोय।
मीरा के प्रभु कबरे मिलोगे, तुम मिलियाँ सुख होय॥

राम मिलण रो घणो उमावो, नित उठ जोऊं बाटड़ियाँ।
दरसण बिन मोहिं पल न सुहावै, कल न पड़त है आँखड़ियाँ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तलफ तलफ के बहु दिन बीते, पड़ी बिरह की फाँसड़ियाँ।
अब तो बेगि दया कर साहिब, मैं हूँ तेरी दासड़ियाँ॥
नैण दुखी दरसण को तिरसे, नाभि न बैठे साँसड़ियाँ।
रात दिवस यह आरत मेरे, कब हरि राखे पासड़ियाँ॥
लगी लगन छूटण की नाहीं, अब क्यों कीजै आटड़ियाँ।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, पूरो मन की आसड़ियाँ॥

पपइया रे पिव की वाणी न बोल।
सुणि पावैली विरहिणी रे थारी राखै पांख मरोड़॥
चांच कटाऊं पपइया रे ऊपर कालर लूण।
पिव मेरा मैं पीव की रे तूं पिव कहै स कूण॥
थारा सवद सुहावणा रे जो पिव मेला आज।
चौंच मढ़ाऊं थारी सोवनी रे तूं मेरे सिरताज॥
प्रीतम को पतियाँ लिखूं कौवा, तूं ले जाय।
जाइ प्रीतमजी सूं यूं कहै रे थारी विरहिणि धान न खाय॥
मीरां दासी व्याकुली रे पिव पिव करत विहाइ।
बेगि मिलो प्रभु अंतरजामी तुम बिन रह्योहि न जाइ॥

मेरे प्रीतम प्यारे राम कूँ लिख भेजूं रे पाती।
स्याम सनेसो कबहुँ न दीन्हो, जानि बूझ गुझबाती।
डगर बुहारूं, पंथ निहारूँ जोइ जोइ अँखियाँ राती॥
रात दिवस मोहि कल न परत है, हीयो फटत मेरी छाती।
मीरां के प्रभु, कब रे मिलोगे, पूरब जनम का साथी॥

सुनी हो मैं हरि आवनि की अवाज।
महल चढ़े चढ़ि जोऊं, सजनी, कब आवैं महाराज॥
दादर मोर, पपइया बोलै, कोइल मधुरे साज।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उमग्यो इंद चहूँ दिस बरसैं, दामणि छोड़े लाज ॥
धरती रूप नवा नवा धरिया, इन्द्र मिलण के काज।
मीरां के प्रभु हरि अविनासी, बेग मिलो, महाराज ॥

म्हांरो जनम मरन को साथी, थांने नहिं बिसरूं दिन राती।
तुम देख्याँ विन कल न पड़त है, जानत मेरी छाती।
ऊंची चढ़ि चढ़ि पंथ निहारूं, रोय रोय अँखियाँ राती।
यो संसार सकल जग झूठा झूंठा कुलरा न्याती।
दोउ कर जोड़्यां अरज करत हूं, सुण लीज्यो मेरी बाती।
यो मन मेरो बड़ो हरामी, ज्यूँ मदमातो हाथी।
सतगुरु दस्त धरयो सिर ऊपर, आँकुस दे समझाती।
पल पल तेरा रूप निहारूँ, निरख निरख सुख पाती।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, हरि चरणाँ चित राती ॥

पायो जी मैंने नाम रतन धन पायो ॥
वस्तु अमोलक दी मेरे सतगुरु,
किरपा कर अपनायो ॥
जनम जनम की पूंजी पाई,
जग में सभी खोवाओ।
खरचै नहिं कोई चोर न लेवे,
दिन दिन बढ़त सवायो ॥
सत की नाव खेवटिया सतगुरु,
भवसागर तर आयो।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर,
हरख हरख जस गायो ॥

मन रे परसि हरि के चरन।
सुभग सीतल कमल कोमल, त्रिविध ज्वाला हरन।
जे चरन प्रहलाद परसे, इन्द्र पदवी धरन।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जिन चरण ध्रुव अटल कीन्हों, राखि अपने सरन।
जिन चरण ब्रह्मांड भेंट्यो, नख-सिखी श्री भरन॥
जिन चरण प्रभु परसि लीने, तरी गौतम घरन।
जिन चरण कालीहि नाथ्यो, गोप लीला करन॥
जिन चरन धार्यो गोबर्द्धन, गरब मघवा हरन।
दास मीरा लाल गिरधर, अगम तारन तरन॥

हरि, तुम हरहु जन की भीर।
द्रोपती की लाज राखी, तुरत बढ़ायो चीर।
भक्त कारण रूप नरहरि, धर्यो आप सरीर।
हिरणकश्यपु मारि लीन्हों, धर्यो नाहीं धीर।
बूड़तो गजराज राख्यो, कियो बाहर नीर।
दासी मीरां लाल गिरधर, चरण कँवल पै सीर॥

मीरा मगन भई हरि के गुण गाय॥
सांप पिटारा राणा भेज्या मीरा हाथ दियो जाय।
न्हाय धोय जब देखण लागी सालिगराम गई पाय॥
जहर का प्याला राणा भेज्या अमृत दीन्ह बनाय।
न्हाय धोय जब पीवण लागी हो अमर अंचाय॥
सूल सेज राणा ने भेजी दीज्यो मीरा सुलाय।
सांझ भई मीरा सोवण लागी मानो फूल बिछाय॥
मीरा के प्रभु सदा सहाई राखे बिघन हटाय।
भजन भाव में मस्त डोलती गिरधर पै बलि जाय॥

करम गति टारे नाहिं टरे।
सतबादी हरिचंद से राजा, नीच घर नीर भरे।
पांच पांडु अरु कुन्ती द्रोपदी, हाड़ हिमालय गरे॥
जज्ञ किया बलि लेण इंद्रासन, सो पाताल धरे॥
मीरा के प्रभु गिरधरनागर, विष से अमृत करे॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

केशवदास

केशवदास का जन्म भारतीय इतिहास के उस युग में हुआ जब भारतीय नरेश अपनी स्वतंत्रता खोकर विलास-सागर में गोते लगाने में ही अपने जीवन का चरमोत्कर्ष मानते थे और मुग़ल दरबार की शानोशौकत से असफल होड़ लगाने की चेष्टा किया करते थे। तत्कालीन सामाजिक अवस्था का प्रभाव कवि-जगत पर भी पड़ा। कवियों का कोई स्वतंत्र व्यक्तित्व न रह गया और वे अपने आश्रयदाता के इंगित पर और उसी की प्रशंसा में काव्य-रचना करने में ही अपने आपको कृतकृत्य समझने लगे। एक ओर जहाँ सूर और तुलसी ने काव्य की आत्मा को जाग्रत करने का सफल प्रयत्न किया था; वहीं दूसरी ओर केशव आदि कवियों ने अपनी संपूर्ण शक्ति को उसका बहिरंग सँवारने के काम पर केन्द्रित कर दिया। रीति-प्रवाह के प्रवर्त्तक के नाते केशव का हिन्दी साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है। उस प्रवाह का वेग इतना अधिक हुआ कि साहित्य-क्षेत्र में भक्ति-प्रवाह रुक-सा गया। सच पूछा जाए तो केशव गतिशील हिन्दी-साहित्य का उन्मुक्त मार्ग अवरुद्ध कर उसके लिए एक ऐसी वर्त्तुलाकार पगडण्डी निश्चित कर गए जिस पर वह दो सौ से अधिक वर्षों तक चक्कर काटता रहा।

केशव का जन्म सं० १६१२ और स्वर्गवास सं० १६७४ के लगभग हुआ माना जाता है। ये सनाढ्य ब्राह्मण कृष्णदत्त के पौत्र थे। वह ओरछा-नरेश महाराज रामसिंह के भाई इन्द्रजीतसिंह के आश्रय में रहते थे। केशव ने उन्हें 'भूतलको इन्द्र' कहा है और उनकी छत्रछाया में स्वयं केशव 'राज सो करत' थे। इससे स्पष्ट है कि ओरछा-दरबार में केशव का बड़ा मान रहा होगा।

केशव की प्रसिद्धि रामचन्द्रिका, कविप्रिया और रसिकप्रिया इन

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तीन ग्रंथों को लेकर है। इनके 'रतन-बावनी', 'जहाँगीर जस चन्द्रिका' आदि कुछ अन्य ग्रंथ भी हैं जिनकी कारणवश कोई विशेष प्रसिद्धि नहीं हो सकी।

केशव ने संस्कृत साहित्य का विस्तृत अध्ययन किया था किन्तु उनपर प्रभाव पड़ा था अन्तिम काल के संस्कृत साहित्य का। वह चमत्कारवाद का युग था और इसी ओर केशव की चित्तवृत्ति अधिक रमती थी। उनके साहित्य में शाब्दिक कलाबाज़ी है, भाव-गाम्भीर्य नहीं। 'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रस निष्पत्तिः सूत्र को वह जानते अच्छी तरह थे किन्तु अनुभूति की तीव्रता और सचाई के अभाव में सहृदय पाठक के अन्तर में उसकी उद्भावना करने में अधिकतर असफल रहे हैं। इनकी योजना कर देने से ही कवि-कर्म समाप्त नहीं हो जाता वरन् कभी कभी भाव-व्यन्जना पर आघात हो सकता है क्योंकि एक ही विभावानुभाव विभिन्न परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न रसों का उद्रेक कर सकते हैं। रामचन्द्रिका में अनेक स्थलों पर केशव ने इसी तरह अपनी प्रतिभा का दुरुपयोग किया है। उदाहरण के लिए 'युद्धकों आजुभरत्थ चढ़े धुनि दुंदुभी की दसहूँ दिसिछाई' में केशव ने कुछ ऐसा चित्र प्रस्तुत किया है मानों वह सचमुच युद्धोन्मुख भरत का चित्रण कर रहे हों। तुलसी ने ऐसी ही स्थिति में पहुँचकर भी राम के मुख से 'सुनहु लखन भल भरत सरीखा, विधि प्रपंच महँ सुना न दीखा।' कहलवा कर परिस्थिति को बड़े कौशल से सँभाल लिया है; किन्तु केशव में यह चातुर्य कहाँ?

केशव ने शृंगार के अन्तर्गत सभी रसों को लाने का प्रयत्न किया है लेकिन बुरी तरह असफल रहे हैं। शृंगार के संचारियों के रूप में क्रोधादि उग्रभावों की व्यंजना भिन्न आलबनों को लेकर तो की जा सकती है लेकिन केशव ने अपनी प्रतिमा का बहुत अधिक भरोसा करके एक ही आलम्बन लेकर वीभत्स जैसे घोर-विरोधी रस को भी शृंगार में भरने का प्रयास किया है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

केशव के श्रृंगार-वर्णन पर अपनी व्यक्तिगत रुचि और परिस्थिति दोनों का प्रभाव है। उनकी अपनी रुचि की झलक हमें उस प्रसिद्ध दोहे से मिल जाती है जो उन्होंने अपनी ढलती उम्र में उष्णोच्छ्वासों के बीच किसी कुएँ की मुँडेर पर बैठकर कहा होगा—'केशव केशनिअस करी जस अरिहू न कराहिं; चन्द्रबदनि मृगलोचनी बाबा कहि-कहि जाएँ।' स्पष्ट है इन मृगलोचनियों के प्रति केशव में कम आकर्षण नहीं रहा होगा। फिर परिस्थितियाँ भी तो कम सुन्दर नहीं थीं। 'इन्द्र' के अखाड़े की अप्सराओं के सत्संग में रहकर स्वामिन: सुखाय काव्य रचना करने वाले दरबारी कवि का प्रेम और श्रृंगार-विषयक आदर्श कैसा हो सकता है, अनुमान कर लेना कठिन नहीं।

कृष्ण-चरित्र को जिस हेय और निम्नस्तर पर लाने में केशव समर्थ हुए हैं और कोई कवि नहीं। केशव के कृष्ण बहुत कुछ उन रसिक छैलाओं से मिलते-जुलते हैं जिनके कारण कुल कामिनियों का अपने घर के वातायन आदि में दिखाई पड़ जाना भी जान को आफ़त मोल ले लेना हो जाता है। पड़ौसी के मकान में लगी हुई आग बुझाने के बहाने वे—"लोचन विशाल चारु चिबुक कपोल चूमि, चम्पे की सी माला लाल लीन्हीं उर लाइ कैं"—अपनी प्यास बुझाने में तत्पर हैं। प्रेमादर्श की हेयता के कारण ही केशव के श्रृंगार-वर्णन में कहीं मार्मिकता नहीं आ सकी। सुनिए, एक दूती कृष्ण को कितने इत्मीनान से समझा रही है—"आजुयासों हँसि खेलि बोलि चालि लेउ बाल, कालिह लाऊँ एक बाल काम की कुमारी-सी।" निर्लज्जता की हद हो गई। इनके कृष्ण और कुछ नहीं तत्कालीन विलासी सामन्तों के प्रतिनिधि मात्र हैं जिनका पेशा ही यह रह गया था।

केशव अपनी चमत्कार प्रियता और शाब्दिक कलाबाज़ी के चक्कर में पड़कर बाह्य चित्रण में भी अधिक सफल नहीं हो सके। एक-आध चरित्र अवश्य ऐसे बन पड़े हैं जो हमारे हृदय पर अमिट छाप छोड़ जाते हैं—जैसे परशुराम का—'कुश मुद्रिका समिधै श्रुवा कुशऔ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कमण्डल कौं लिए.....' चित्र बड़ा सजीव और आकर्षक है।

मानव-मन की विविध अवस्थाओं का ज्ञान तो केशव को था ही नहीं, प्रकृति के बीच भी वे मानों आँखें मूँद कर हो जाते हैं। प्रकृति के प्रति उनके हृदय में कोई अनुराग नहीं दिखाई देता।

चरित्र-चित्रण में भी कहीं-कहीं केशव ने अनर्थ कर दिया है। वनगमन के समय राम के लक्ष्मण से भरत के सम्बन्ध में यह कहने— "जो दुःख देयँ......" से उनके हृदय का संदेह ध्वनित होता है। इसी तरह कैकेयी के व्यवहार से राम के प्रति उसका स्वाभाविक द्वेष लक्षित होता है। केशव की कौशल्या में भी ज्वालामुखी की प्रचण्डता है। राम के वन जाने का समाचार सुनते ही वह "अवधपुरी में गाज परै" कहकर फट पड़ती है।

कथा-सूत्र का भी केशव सम्यक् निर्वाह नहीं कर सके। कहीं-कहीं वह झटके से टूट जाता है। मुख्य घटनाओं पर वह इस तरह ध्यान केन्द्रित कर देते हैं कि बीच की घटनाओं को भूल तक जाते हैं।

एक ही क्षेत्र ऐसा है जहाँ केशव का काव्य साधारण धरातल से बहुत ऊँचा उठ गया है और वह है कथोपकथन। इस दिशा में वे तुलसीदास से भी बाज़ी मार ले गए हैं। उनके संवादों में उनकी कूट-नीतिक प्रवृत्ति और दरबारी वाग्वैदग्ध्य की अच्छी झाँकी मिलती है। रावण-अंगद और राम- परशुराम के संवाद बहुत सजीव हैं। इन स्थलों पर उनकी भाषा में भी भावानुरूप ओजगुण का प्राधान्य है। निम्नलिखित सोरठे में उन्होंने राम की नम्रता दूरदर्शिता, शांति-प्रियता और तपस्वी ब्राह्मण के प्रति सम्मान का मनोहर चित्रण किया है—

लियौ धनुष जब हाथ तीनिहुँ भैयन रोष करि,
बरज्यौ श्री रघुनाथ तुम बालक 'जानत कहा।

केशव ने बुंदेलखण्डी मिश्रित व्रज-भाषा का प्रयोग किया है

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

लेकिन उसे तोड़ने-मरोड़ने की प्रवृत्ति के कारण दुरूह बना दिया है। प्रसाद और माधुर्य गुण का इसमें सर्वथा अभाव है। उचितस्थलों पर ओजगुण अवश्य आ गया है।

इतना तो कहना ही होगा कि केशव में सूक्ष्म और प्रतिभा थी और अगर वह अपनी चमत्कारी प्रवृत्ति पर सहृदयता का अंकुश रख सके होते तो हमें केशव नाम का एक कहीं ऊँची कोटि का कवि मनन करने को मिलता।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

केशवदास

(१) अंगद-रावण-सम्वाद

अंगद कूदि गये जहाँ आसन-गत लंकेस।
मनु मधुकर करहाट पर सोभित श्यामल बेष ॥

प्रतिहार

पड़ी, बिरंचि, मौन बेद ; जीव, सोर छंडि रे।
कुबेर, बेर कै कही न यक्ष-भीर मंडि रे ॥
दिनेस, जाइ दूरि बैठ नारदादि संग ही।
न बोलु, चन्द मन्दबुद्धि इन्द्र की सभा नहीं ॥
अङ्गद यौं सुनि बानी। चित्त महा रिस आनी ॥
ठेलि कै लोग अनैसे। जाय सभा महँ वैसे ॥
कौन हो, पठये सो कौने, ह्यां तुम्हें कहा काम है ?
जाति बानर, लंकनायक-दूत, अङ्गद नाम है ॥
कौन है, वह बाँधि कै हम देह-पूँछ सबै दही ?
लङ्क जारि संहारि अच्छ गयो सो बात वृथा कही ?
कौन के सुत ? बालि के; वह कौन बालि, न जानियो ?
काँख चाँपि तुम्हें जो सागर सात न्हात बखानियो ॥
है कहाँ वह ? बीर अङ्गद देवलोक बताइयो।
क्यों गयों ? रघुनाथ-बान-बिमान बैठि सिधाइयो ॥
लङ्कनायक को ? बिभीखन देव-दूखन को दहै।
मोहि जीवत होहि क्यों ? जग तोहि जीवत को कहै ?
मोहि को जग मारिहै ? दुरबुद्धि तेरिय जानियै।
कौन बात पठाइयो कहि, बीर, बेगि बखानियै ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अंगद

श्रीरघुनाथ को बानर केसव आयो हौ एक, न काहू हयो जू।
सागर को मद झारि चिकारि त्रिकूट की देह विहारि गयो जू॥
सीय निहारि सँहारि कै राच्छस सोक असोक-वनीहि दयो जू।
अच्छकुमारहिं मारिकै लङ्कहि जारिकै नीके कै जात भयो जू॥
राम राजान के राज आये इहाँ धाम तेरे महाभाग जाये अबै।
देवि मंदोदरी कुंभकर्णादि दै मित्र-मन्त्री जिते पूछि देखौ सबै॥
राखियै जाति कौ पाँति कौ वंस कौ गोत कौ साधियै लोक परलोक कौ।
आनि कै पां परौ देस कौ कोस कौ लै, आसुही ईससीता चलैं-ओक कौ।

रावण

लोक-लोकेस स्यौं जो-जो ब्रह्मा रचे, आपनी-आपनी सींव सो-सो रहै।
चारि बाहैं धरैं बिस्नु रच्छा करैं, बात साँची यहै बेद-बानी कहै॥
ताहि भ्रूभंग ही देव-देवेस स्यौं बिस्नु-ब्रह्मादि दै रुद्रजू संहरै।
ताहि हौं छांड़ि कै पाँय काके परौं, आजु संसार तौं पाँय मेरे परै॥
राम को काम कहा ? रिपु जीतहिं; कौन कबै रिपु जीत्यौ कहाँ ?
बालि बली, छल सौं; भृगुनन्दन-गर्व हरयो; द्विज दीन महा॥
दीन सो क्यों, छिति छत्र हत्यौ, बिन प्रानन हैहय-राज कियौ।
हैहय कौन ? वहै, बिसरयौ ? जिन खेलत ही तोहि बांधि लियौ॥

अंगद

सिन्धु तरयौ उन को बनरा; तुम पै धनु-रेख गयी न तरी।
बानर बाँधत, सो न बँध्यो;उन वारिधि बाँधि कै बाट करी॥
श्रीरघुनाथ-प्रताप की बात तुम्हें, दसकंठ, न जानि परी ?
तेलहु-तूलहु पूँछ जरी न जरी, जरी लंक जराइ-जरी॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रावण

छाँड़ि दियौ हम ही बनरा वह, पूँछ की आगिन लंक जरी ॥
भीर मैं अच्छ मर्‍यौ चपि बालक, बादिहि-धाइ प्रसस्ति करी ॥
ताल बिंधे अरु सिंधु बँध्यौ यह, चेटक, विक्रम कोन कियौ ।
बानर को नर को बपुरा, पल मैं सुरनायक बाँधि लियौ ॥

अंगद

चेटक सों धन भंग कियौ, तन रावन के अति ही बलु हौ ।
बान समेत रहे पचिकै तहँ जा सँग, पै न तज्यौ थलु हौ ॥
बान सो कौन ? बली बलि कौ सुत; वै बलि बामन बाँधि लियौ ।
बेई सु तो जिन की चिर चेरिन नाचनयाइकैं छाँड़ि दियौ ॥

रावण

नील सुखेन हनू उन के, अरु और सबै कपिपुंज, तिहारे ।
आठहुँ आठ दिसा बलि दै, अपनो पदु लै, पितु जा लगि मारे ॥
तो सो सपूतहि जाइकै बालि अपूतन की पदवी पगु धारे ।
अंगद संग लै मेरो सबै दल आजुहि क्यों न हतै बपुमारै ? ॥
जो सुत अपने बाप कौ बैर न लेइ प्रकास ।
ता सों जीवत ही मर्‍यौ लोग कहैं तजि त्रास ॥

अंगद

इन कौ बिलगु न मानियै कहि केसव पल आधु ।
पानी पावक पवन प्रभु ज्यौं असाधु त्यौं साधु ॥

रावण

डरसि, अंगद, लाज कछू गहौ । जनक-घातक-बाग वृथा कहौ ॥
सहित लक्ष्मण रामहि संहरौ । सकल बानर-राज तुम्हें करौ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अंगद

सत्रु, सम, मित्र हम चित्त पहचानहीं।
दूत-बिधि नत कबहूँ न उर आनहीं ॥
आप मुख देखि अभिलाख अभिलाखहू।
राखि-भुज-सीस तबऔर कहँ राखहू ॥
नराच श्रीराम जहीं धरैंगे। असेस माथे कटि भू परैंगे ॥
सिखा सिवा-स्वान गहे तिहारी। फिरैं चहूँ ओर, निरै-बिहारी ॥

रावण

महामीचु दासी सदा पाँइ धोवै। प्रतीहार ह्वै कै कृपा सूर जोवै ॥
छपानाथ लीने रहै छत्र जाकौ। करैगो कहा सत्रु सुग्रीव ताकौ ॥
सका मेघमाला, सिखी पाककारी। करै कोतवाली महादंडधारी ॥
पढ़ै वेद ब्रह्मा सदा द्वार जाके। कहा बापुरो सत्रु सुग्रीव ताके ॥

अंगद

पेट चढ़्यौ, पलना-पलका चढ़ि, पालकिहू चढ़ि, मोह चढ़्यौ रे ॥
चौक चढ़्यौ, चितसारि चढ़्यौ, गज-बाजि चढ़्यौ, गढ़गर्व चढ़्यौ रे।
ब्योम बिमान चढ़्यौई रह्यौ, कहि केसव, सो कबहू न पढ़्यौ रे ॥
चेतत नाहिं, रह्यौ चढ़ि चित्त, सो चाहत मूढ़ चिताहू चढ़्यौ रे ॥

रावण

निकार्‌यौ जु भैया, लियो राज जाकौ। दियौ काढ़िकै जू महात्रास ता कौ ॥
लिये बानराली, कहौं बात तो सौं। सु कैसे जुरै राम संग्राम मो सौं॥

अंगद

हाथी न साथी न घोरे न चेरे न गाउँ न ठाउँ-कुठाउँ बिलैहै।
तात न मात न पुत्र न मित्र न बित्त न तीय कहूँ संग रैहै ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

केसव, काम के राग बिसारत और निकाम ते काम न एहै।
चेति रे चेति अजौं चित अन्तर, अन्तकलोक अकेलोई जैहै ॥

रावण

डरै गाय-बिप्रै, अनाथै जो भाजै। परद्रव्य छांड़ै परस्त्रीहि लाजै ॥
परद्रोह जा सौं न होवै रती कौ। सो कैसे लरै बेस कीन्है जती कौ ॥
गेंद कर्‍यौ मैं खेल कौ हर-गिरि, केसोदास।
सीस चढ़ाये आपने कमल-समान सहास ॥

अङ्गद

जैसो तुम कहत उठायो एक हर-गिरि
ऐसे कोटि कपिन के बालक उठावहीं।
काटे जो कहत सीस, काटत घनेरे घाघ,
मगर के खेल क्यों सुभट पद पावहीं ॥
जीत्यौ जो सुरेस रन, साप रिखि-नार ही कौ,
समझहु, हम द्विज-नाते समुझावहीं।
गहौ राम-पाँइ, सुख पाइ करैं तपी तप,
सीताजू को देहु, देव दुंदुभी बजावहीं ॥

रावण

नषी-तपी बिप्रन छिप्र ही हरौं। अदेवद्वेषी सब देव संहरौं ॥
सिया न दैहौं, यह नेम जी धरौं। अमानुसी भूमि अबानरी करौं ॥

अङ्गद

पाहन तें पतिनी करी पावन, टूक कियौ धनुहू हर कौ रे।
छत्र-बिहीन करी छन में छिति, गर्ब हर्‍यौ तिन के बर कौ रे ॥
पर्बत-पुंज पुरैनि के पात समान तरे, अजहूँ धरकौ रे।
होइँ नरायनहू पै न ये गुन, कौन यहाँ नर, बानर को रे ?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रावण

देहिं अङ्गद राज तो कहँ मारि बानरराज कौ।
बाँधि देहिं बिभीखनै अरु फोरि सेतु समाज कौ॥
पूँछ जारहिं अच्छ-रिपु की, पाइँ लागहिं रुद्र के।
सीय को तब देहुँ रामहि, पार जाय समुद्र के॥

अङ्गद

लंक लाय दियौ बली हनुमंत सन्तन गाइयो।
सिन्धु बाँधत सोधि कै नल छीर छींट बहाइयो॥
ताहि तोहि समेत, अन्ध, उखारि हौं उलटी करौं।
आजु राज कहाँ बिभीखन बैठिहै तेहि तें डरौं॥
अङ्गद रावन को मुकुट लैकरि उड़्यौ सुजान।
मनो चल्यौ जम-लोक कौं दससिर को प्रस्थान॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

७

बिहारी

भारतीय इतिहास में जहाँगीर-शाहजहाँ युग संगीत और कला की सर्वतोमुखी अभिवृद्धि का युग था। ताज और तानसेन इसी युग की विभूतियाँ हैं जिनमें से एक अपनी साक्षात् उपस्थिति से आज भी दर्शकों के मन मोह लेता है और दूसरा क्रूर काल का ग्रास होने के बाद भी सदा-सर्वदा के लिए अमर हो गया है। नाज़ुक ख़्याली और बारीक़ी के इसी युग में अमर कलाकार बिहारी का आविर्भाव हुआ।

बिहारी का जन्म ग्वालियर के पास बसुआगोविंदपुर ग्राम में एक साधारण माथुर चौबे परिवार में संवत् १६६० में हुआ था। इनके पिता का नाम केशवराय था। यौवनावस्था में ये अपनी ससुराल मथुरा में रहे। बाद में वे जयपुर के राजा जयसिंह के यहाँ चले गए और उनके जीवन-पर्यन्त वहीं रहे। काव्य-रचना में उन्हें जयसिंह से बराबर प्रेरणा और प्रोत्साहन मिलता रहा। १७२० में इनका देहावसान हो गया।

बिहारी ने अपने ६० वर्ष के जीवन में कुल मिलाकर लगभग ७०० दोहे लिखे। इनमें से थोड़े-से दोहे नीति और भक्ति के हैं। शेष सभी शृंगार के दोहे हैं जो बिहारी का प्रिय विषय है और जिसमें वे अपने युग के सभी कवियों को पीछे छोड़ गए हैं। तुलसी और सूर को छोड़ साहित्य-क्षेत्र में बिहारी की सर्वाधिक ख्याति है। रीतिकाल का अधिकांश काव्य पिष्टपेषण है। सर्वत्र एक से ही लगे-बँधे भाव और उपमा-रूपकादि अलंकार देखने को मिलेंगे। केवल बिहारी में मौलिकता देखने को मिलती है—सो भी भाव-क्षेत्र में नहीं केवल कहने के ढंग में।

बिहारी मुख्य रूप से शृंगार और प्रेम के कवि हैं। उनकी सजग

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कल्पना-शक्ति एक ही साथ अनेक चित्रों की उद्भावना करती है और वह उन्हें दोहे जैसे छोटे छन्द में गुम्फित करके पेश कर देते हैं। इन दोहों की गोलाई, चिकनाई और मिठास पाठक के हृदय पर सीधा प्रभाव डालती है। उनमें अभिव्यंजना-शक्ति का पूर्ण उत्कर्ष मिलता है। शुक्ल जी के अनुसार—'सफल मुक्तककार के लिए जो कल्पना की समाहार-शक्ति और भाषा को समास-शक्ति वांछनीय है वह बिहारी में पूरी तौर से वर्तमान थी।'

प्रेम-सम्बन्ध का चरमोत्कर्ष इसी में है कि प्रेमी और प्रेम-पात्र में कोई अंतर न रहे। यह वह अवस्था है जब प्रेमी को अपने में ही प्रेम-पात्र का साक्षात्कार होने लगता है। इसकी कितनी सुन्दर व्यंजना बिहारी ने की है:—

'पिय कै ध्यान गही रही' रही वही ह्वै नारि।
आपु आपु ही आरसी लखि रीझति रिझवारि॥

प्रिय की कोई भी ऐसी वस्तु जिसका उससे सम्बन्ध हो या रहा हो प्रेमी के लिए आलंबन बन जाती है और विरह में वही वस्तु वेदना को और भी उद्दीप्त करती है। किसी नायिका को यमुना-तट के सघन कुन्ज में शीतल पवन के स्पर्श से कृष्ण का स्मरण हो आता है और—

"मनु ह्वै जातु अजौं वहै वा जमुना के तीर।" इन 'अजौं वहै' और 'वा' शब्दों और दोहे की मंद गति द्वारा बिहारी ने नायिका के हृदय की मीठी-मीठी टीस की बड़ी मार्मिक व्यंजना की है। एक और चित्र देखिए—खण्डिता नायिका रात भर नायक की प्रतीक्षा में बैठी रही है और वह नहीं आया; भोर हो उठा है—

"नभ लाली चाली निशा चटकाली धुनि कीन,
रतिपाली आली अनत आए बनमाली न।"

इस दोहे में एक अजीब मस्ती और जादू है।

वियोग और संयोग दोनों के ही वर्णन में बिहारी को समान सफलता मिली है। उसमें बहुत कुछ परिपाटी-बद्ध है पर उसमें मौलिकता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

की भी कमी नहीं। उन्होंने जिस भाव को उठाया, अपनी कला की द्युति से उसे एक अजीब चमक प्रदान कर दी है। बिहारी के दोहों में नाद-सौंदर्य भी पाया जाता है। निम्नलिखित दोहे में शब्दों की ऐसी सुन्दर व्यंजना है कि उससे भौंर-गुंजार से युक्त मधुर मलयानिल के बहने की ध्वनि सी निकलती है—

'रणत भृंग घंटावली, झरतदान मधुनीर;
मंद मंद आवत चल्यौ कुंजर कुंज कुटीर।।

कुछ दोहों में अतिशयोक्ति के कारण अस्वाभाविकता और हास्यास्पदता आ गई है।

किन्तु शृंगार की रौ में बहकर बिहारी ने कुछ ऐसे चित्र भी प्रस्तुत किए हैं जिनमें अश्लीलता आ गई है। एक स्थान पर तो उन्होंने वात्सल्य-भाव का तिरस्कार कर उसे रति-भाव के भार से बुरी तरह दबा दिया है:—

"बिहँसि बुलाइ बिलोकि उत प्रौढ़ तिया रस घूमि,
पुलकि पसीजति पूत कौ पिय चूम्यौ मुँह चूमि।"

अंतिम पंक्ति देखिए! माता वात्सल्य-भाव से प्रेरित होकर 'पूत' का मुँह नहीं चूमती। उसे इस बात से आनंदानुभूति होती है कि इसी मुख को अभी-अभी 'पिया' ने चूमा है। शृंगार-प्रियता निर्लज्जता की हद तक पहुँच गई है।

बिहारी ने विशुद्ध ब्रज-भाषा का प्रयोग किया है। उनकी भाषा मृदु, मधुर और परिमार्जित है। कहीं-कहीं उर्दू, फ़ारसी, अरबी के शब्द भी आए हैं लेकिन पूरी तरह भारतीयता के रंग में रँगे हुए। तोड़-मरोड़ की प्रवृत्ति बहुत कम है। शब्द-चयन उनकी सुरुचि का परिचायक है। हर शब्द अपनी पूरी सार्थकता लिए हुए है—भरती का शब्द कहीं एक भी नहीं मिलेगा। भाषा पर उनका असाधारण अधिकार है। हर दोहे में एक अजीब मस्ती और गठन है और वह माधुर्य

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

और रस से लबालब भरा है—यही उनकी लोकप्रियता का एक विशेष कारण है ।

यह सच है कि बिहारी में इतना उत्साह और सामर्थ्य नहीं थी कि वे रीतिकालीन शृंगार-प्रवाह की धारा बदल देते और उनका यह आग्रह भी नहीं । उन्होंने तत्कालीन वातावरण को पूरी तरह स्वीकार कर लिया लेकिन इस घेरे में रहकर ही उन्होंने जो कुछ लिखा उससे यह सिद्ध कर दिया कि कवि की महत्ता इस बात पर निर्भर नहीं कि उसने कितना लिखा वरन् इस पर है कि उसने कैसा लिखा । बिहारी अपने युग के सच्चे प्रतिनिधि हैं और काव्य-साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कलाकार ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बिहारी

मेरी भवबाधा हरौ राधा नागर सोइ।
जा तन की झाँई परै स्याम हरित दुति होइ॥
तजि तीरथ हरि राधिका तन दुति करि अनुरागु।
जिहिं ब्रज केलि निकुंज मग पग पग होतु प्रयागु॥
या अनुरागी चित की गति समुझै नहिं कोइ।
ज्यौं ज्यौं बूड़ैस्याम रंग, त्यौं त्यौं उज्जलु होइ॥
अधर धरत हरि के परत, ओठ दीठि पट जोति।
हरित बाँस की बाँसुरी, इन्द्रधनुष दुति होति॥
सोहत ओढ़े पीतपट, स्याम सलोने गात।
मनो नीलमनि सैल पर, आतप पर्‌यो प्रभात॥
चिरजीवौ जोरी जुरै, क्यौं न सनेह गम्भीर।
को घटि, ए बृषभानुजा; वे हलधर के वीर॥
मोर चंद्रिका, स्याम सिर चढ़ि कत करति गुमानु।
लखिबी पाइन पर लुठति, सुनियतु राधा मानु॥
करौ कुबत जग, कुटिलता, तजौं न, दीन दयाल।
दुखी होउगे सरल हिय बसत, त्रिभंगी लाल॥
मैं समुझ्यौ निरधार, यह जग काँचो काँच सो।
एकै रूप अपार, प्रतिबिंबित लखियत जहाँ॥
लिखन बैठि जाकी सबी गहि गहि गरब गरूर॥
भये न केते जगत के चतुर चितेरे क्रूर॥
भूषन भार सम्हारिहै क्यौं इहि तन सुकुमार।
सूधे पाइँ न धरि परैं सोभा ही के भार॥
इन दुखियाँ अँखियानु कौं सुखु सिरज्यौई नाहिं।
देखत बनै न देखते, अनदेखे अकुलाहिं॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दृग उरझत, टूटत कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीति ।
परति गाँठ दुरजन हिये, दई, नई यह रीति ॥
नेहु न, नैनन कौं कछू उपजो बड़ी बलाइ ।
नीर भरे नित प्रति रहैं, तऊ न प्यास बुझाइ ॥
अंग अंग नग जगमगत दीप सिखा सी देह ।
दिया बढ़ायें हूँ रहै बड़ौ उज्यारौ गेह ॥
मानहुँ विधि तन अच्छ छवि स्वच्छ राखिबे काज ।
दृग पग पोंछन कौं किए भूषन पायंदाज ॥
सखी सिखावति मान बिधि, सैननि बरजति बाल ।
हरुये कहि, मो हीय में बसत बिहारीलाल ॥
हौं ही बौरी बिरह बस, कै बौरौ सब गाँउ ?
कहा जानि ए कहत हैं ससिहि सीतकर नाँउ ॥
वाम बाँह फरकति मिलैं जौ हरि जीवन मूरि ।
तौ तोही सौं भेंटिहौं राखि दाहिनी दूरि ॥
अजौं तरयौना ही रह्यौ सुति सेवत इक अंग ।
नाक बास बेसरि लह्यौ, बसि मुकुतनु के संग ॥
बैठि रही अति सघन वन पैठि सदन तन माँहि ।
देखि दुपहरी जेठ की छाँही चाहति छाँहि ॥
कहिलाने एकत रहत, अहि मयूर मृग बाघ ।
जगत तपोवन सो कियो, दीरघ दाघ निदाघ ॥
नाचि अचानक ही उठे विनु पावस बन मोर ।
जानति हौं, नन्दित करी इहि दिसि नन्द किसोर ॥
पावस घन अँधियार महिं रह्यौ भेद नहिं आन ।
राति द्यौस जान्यौ परतु लखि चकई चकवान ॥
धुरवा होहि न, लखि, उठे घुँआ धरनि चहुँ कोद ।
जारत आवत जगत को, पावस प्रथम पयोद ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चुवतु स्वेद सीतल किरन निसि सुख दिन अवगाहि ।
माह ससी-भ्रम सूर-त्यौं रहति चकोरी चाहि ॥
रनित भृंग घंटावली, झरित दान मधु नीर ।
मंद मंद आवतु चल्यौ, कुंजरु कुंज समीर ॥
सघन कुंज छाया सुखद, सीतल मंद समीर ।
मन ह्वै जात अजौं वहै वा जमुना के तीर ॥
इहि आशा अटक्यौ रहतु अलि गुलाब के मूल ।
ह्वै हैं बहुरि बसन्त ऋतु, इन डारनु वे फूल ॥
जद्यपि सुन्दर, सुघर, पुनि सगुनौ दीपक देह ।
तऊ प्रकास करे तितौ, भरियै जितौ सनेह ॥
जो चाहत चटक न घटै, मैलो होय न मित्त ।
रज राजस न छुवाइये, नेह चीकने चित्त ॥
जिन दिन देखे वै कुसुम गयी सो बीति बहार ।
अब, अलि, रही गुलाब की अपत कटीली डार ॥
को छूटचौ यहि जाल परि कत, कुरंग अकुलात ।
ज्यौं ज्यौं सुरझि भज्यौ चहै, त्यौं त्यौं उरझत जात ॥
पट्टु पाखें, भखु काँकरैं, सदा परेई संग ।
सुखी परेवा जगत में, एकै तु हीं बिहंग ॥
झूठे जानि न संगहै, मन मुँह निकले बैन ।
याही तैं मानौं किये. बातन को बिधि नैन ॥
कनक कनक तें सौगुनी, मादकता अधिकाय ।
वहि खाये बौराय जग, यहि पाये बौराय ॥
स्वारथ सुकृत न, स्रम बृथा, देखु, विहंग बिचारि ।
बाज पराये पानि परि तू पंछीनु न मारि ॥
कर लै सूँघि सराहि कै सबै रहे गहि मौन ।
गंधी अंध, गुलाब कौ; गँवई गाहक कौन ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

करि फुलेल कौ आचमन मीठौ कहत सराहि।
रे गंधी मति-अंध तू, अतर दिखावत काहि॥
तन्त्री नाद कवित्त रस सरसराग रति रंग।
अन बूड़े बूड़े तिरे जे बूड़े सब अंग॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

८

भूषण

भूषण का जन्म एक ऐसे युग में हुआ जब विलासी और रूप-लोलुप राजाओं के आश्रय में रहते-रहते कविता रूढ़िबद्ध हो गई थी और कवियों को अपने आश्रयदाताओं के प्रशस्ति गान और नारी के नग्न-रूप का चित्रण करने के अतिरिक्त काव्य के और विषय नहीं मिलते थे। उनमें स्वतन्त्र-चिन्तन-शक्ति और मौलिकता का लोप हो चुका था। उधर राजनीतिक स्थिति यह थी कि औरङ्गज़ेब की कट्टरता के कारण चेतना शून्य हिन्दू-जाति की धमनियों में एक बार फिर रक्त की गति तीव्र हो उठी थी और उनमें क्रान्ति की ज्वाला जागृत हो रही थी। इधर सिखों ने अँगड़ाई ली और उधर वीर-केसरी महाराज शिवाजी और छत्रसाल ने साम्राज्यवादियों की नींद हराम करदी। कविवर भूषण इसी युग की देन थे। अपने आस-पास विलास-सागर में गोते लगाते हुए और सब अंग डूबने पर भी अपने आपको तिरते हुए समझने वाले कवियों के बीच एक ऊँचे द्वीप पर खड़े हुए भूषण की ओजस्वी वाणी राष्ट्रीय महत्वाकांक्षाओं की प्रतिमूर्ति शिवाजी का आश्रय पाकर सहस्र मुख से मुखरित हो उठी।

भूषण काजन्म कानपुर के पास 'तरनि-तनूजा-तीर' पर स्थित त्रिविक्रमपुर (तिकवाँपुर) ग्राम में अनुमानतः १६९२ वि० में हुआ था। वह त्रिपाठी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम रत्नाकर था। जनश्रुति इन्हें कवि चिन्तामणि और मतिराम का भाई ठहराती है। 'भूषण' की उपाधि इन्हें हृदयराम-सुत-रुद्र ने दी थी और इस नाम से वे इतने प्रसिद्ध हुए कि आज उनके वास्तविक नाम का कोई पता ही नहीं। सं० १७७२ के लगभग उनका स्वर्गवास हुआ।

भूषण-काव्य के नायक छत्रपति शिवाजी हैं। शिवाजी और

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

छत्रसाल को अपने काव्य का नायक भूषण ने इसलिए नहीं बनाया कि वे उनके आश्रयदाता थे वरन् इसलिए कि हिन्दू-जाति में उद्‌बुद्ध क्रान्ति-भावना और उनकी बिखरी हुई शक्ति रणचण्डी के इन उपासकों में केन्द्रीभूत हो गई थी। वस्तुतः शिवाजी और छत्रसाल तत्कालीन राष्ट्रीय-भावना के और इस्लाम के प्रति हिन्दुत्व के विद्रोह के प्रतीक हैं और भूषण ने उसी भावना को प्रोत्साहन देने के लिए क्रान्ति के गीत गाए हैं। भूषण के लिए शिवाजी वही हैं जो तुलसी के लिए राम। हो सकता है आज हमें उनकी मनोवृत्ति में संकीर्णता के दर्शन हों लेकिन तत्कालीन परिस्थितियों की यही माँग थी और भूषण का आविर्भाव युग को इसी माँग को पूरा करने के लिए हुआ था। भूषण को किसी सम्प्रदाय के प्रति विद्वेष नहीं पर हाँ अपने धर्म के प्रति उन्हें अत्यधिक ममता है। उस पर आक्रमण करने वाला उनका महान् शत्रु है। इसीलिए उन्होंने औरंगज़ेब को हर तरह से बुरा-भला कहा है। कभी वे उसकी शक्ति को चुनौती देते हैं—दिल्ली डूब रही है; दिल्लीपति चुप क्यों हैं? अपनी शक्ति का चमत्कार दिखाए—! ले महाकाल रूपी पराक्रमी शिवा से टक्कर! उनकी ललकार में कितना ओज है······! 'हिन्दुन के पति सौं न बिसात, सतावत हिन्दु गरीबन पाइ कैं। लीजै कलंक न दिल्ली के बालम, आलम आलमगीर कहाइ कैं॥" और 'बूढ़ति है दिल्ली सो सम्हारै क्यों न दिल्लीपति धक्का आनि लाग्यौ शिवराज महाकाल को।'

भूषण ने अतिशयोक्तियों से भी काम लिया है लेकिन वे ऐसी नहीं जिनका हम मज़ाक उड़ाएँ, वे हमें रोमाञ्चित और हर्षित करती हैं और सुप्त भावनाओं को जागृत करती हैं। शिवाजी के आतङ्क से औरँगज़ेब की नींद हराम होगई है। किसी को अगर दक्षिण का सूबेदार नियुक्त किया जाता है तो उसके प्राण सूख जाते हैं। शिवाजी का आतंक दिगन्त में व्याप्त है—उसके डर से मुग़ल-सरदार अपनी बेग़मों को लिए एक जगह से दूसरी जगह भागते फिरते हैं। भागने के श्रम

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

से थकी हुई कोमलांगी मुग़ल-कामिनियों की अस्त-व्यस्त अवस्था का वर्णन देखिए—'बालिय्राँ बिथुर जिमि आलियाँ नलिन पर लालियाँ मलिन मुगलानियाँ मुखन की।'

हिन्दू-जाति के ह्रास का अनुभव करके उसके पुनरुत्थान में जितना सक्रिय-सहयोग भूषण ने दिया किसी भी दूसरे कवि ने नहीं दिया। उनको इस अनुभूति से कि–'आपस की फूट ही तैं सारे हिन्दुवान टूटे–' हार्दिक क्लेश हुआ और वे उसके उद्धार के लिए जीवन पर्यन्त प्रयत्न-शील रहे।

भूषण के काव्य में ऐतिहासिक तत्व भी काफ़ी मात्रा में मिलते हैं। उनके वर्णन तत्कालीन ऐतिहासिक घटनाओं पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं।

भूषण ने ब्रज-भाषा का प्रयोग किया है। उनकी कविता में उसका सहज माधुर्य लुप्त होगया है और उसने वीर-रसानुकूल एक अत्यन्त ओजमय रूप धारण कर लिया है। उसमें हृदय की वीर-भावनाओं को जागृत कर देने की अद्भुत क्षमता है। उनकी भाषा में विदेशी शब्दों की भी कमी नहीं। शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा भी काफ़ी गया है। अप-भ्रंश और प्राकृत शब्दों के प्रयोग से कहीं-कहीं क्लिष्टता आगई है।

भूषण मौलिक साहित्यकार हैं। यह सत्य है कि वह समय की गति बदल नहीं सके लेकिन जो कर्त्तव्यनिष्ठ व्यक्ति समय की आँधी के थपेड़ों से बचता हुआ एक निश्चित लक्ष्य की ओर बढ़ता जाता है उसकी महत्ता किसी तरह कम नहीं होती। भूषण ने अपनी दृष्टि रीति-युग की विलास प्रवण भावोत्तेजक नग्न-नारी-मूर्ति की ओर से हटाकर उस जगह लगाई जहाँ लाखों-करोड़ों असहाय पुरुषों के प्राणों और कुल-कामिनियों की मर्यादा कच्चे धागे के सहारे अटकी हुई थी, जहाँ उनके धार्मिक विश्वासों पर अकारण चोट पर चोट की जा रही थी। कुछ भी हो इस युग के कवियों में भूषण का सिर सबसे ऊँचा है उनके व्यक्तित्व की होड़ कोई नहीं कर सकता।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भूषण

ब्रह्म के आनन तें निकसे तें अत्यन्त पुनीत तिहूँ पुर मानी ।
राम युधिष्ठिर के बरने बलमीकहु व्यास के अंग सोहानी ॥
भूषन यो कलि के कविराजन राजन के गुन गाय नसानी ।
पुन्य चरित्र सिवा सरजै सर न्हाय पवित्र भई पुनि बानी ॥

राखी हिन्दुवानी हिन्दुवान को तिलक राख्यो
अस्मृति पुरान राखे वेद विधि सुनी में ।
राखी रजपूती राजधानी राखी राजन की
धरा में धरम राख्यो राख्यो गुन गुनी में ॥
भूषण सुकवि जीति हद मरहट्टन की
देस देस कीरति बखानी तब सुनी में ।
साहि के सपूत सिवराज समसेर तेरी
दिल्ली दल दाबि के दिवाल राखी दुनी में ॥

इन्द्र जिमि जम्भ पर बाड़व सुअम्भ पर,
रावन सदम्भ पर रघुकुल राज है ।
पौन बारिबाह पर सम्भु रतिनाह पर,
ज्यौं सहस्त्रबाहु पर राम द्विजराज है ॥
दावा द्रुम दंड पर चीता मृगझुण्ड पर,
भूषण बितुण्ड पर जैसे मृगराज है ।
तेज तम अंस पर कान्ह जिमि कंस पर,
त्यौं मलिच्छ बंस पर सेर सिवराज है ॥

गरुड़ को दावा सदा नाग के समूह पर,
दावा नाग जूह पर सिंह सिरताज को ।
दावा पुरहूत को पहारन के कुल पर,
पच्छिन के गोल पर दावा सदा बाज को ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

से थकी हुई कोमलांगी मुग़ल-कामिनियों की अस्त-व्यस्त अवस्था का वर्णन देखिए—'बालिश्रॉं बिथुर जिमि आलियाँ नलिन पर लालियाँ मलिन मुगलानियाँ मुखन की।'

हिन्दू-जाति के ह्रास का अनुभव करके उसके पुनरुत्थान में जितना सक्रिय-सहयोग भूषण ने दिया किसी भी दूसरे कवि ने नहीं दिया। उनको इस अनुभूति से कि—'आपस की फूट ही तैं सारे हिन्दुवान टूटे—' हार्दिक क्लेश हुआ और वे उसके उद्धार के लिए जीवन पर्य्यन्त प्रयत्न-शील रहे।

भूषण के काव्य में ऐतिहासिक तत्व भी काफ़ी मात्रा में मिलते हैं। उनके वर्णन तत्कालीन ऐतिहासिक घटनाओं पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं।

भूषण ने ब्रज-भाषा का प्रयोग किया है। उनकी कविता में उसका सहज माधुर्य लुप्त होगया है और उसने वीर-रसानुकूल एक अत्यन्त ओजमय रूप धारण कर लिया है। उसमें हृदय की वीर-भावनाओं को जागृत कर देने की अद्भुत क्षमता है। उनकी भाषा में विदेशी शब्दों की भी कमी नहीं। शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा भी काफ़ी गया है। अप-भ्रंश और प्राकृत शब्दों के प्रयोग से कहीं-कहीं क्लिष्टता आगई है।

भूषण मौलिक साहित्यकार हैं। यह सत्य है कि वह समय की गति बदल नहीं सके लेकिन जो कर्त्तव्यनिष्ठ व्यक्ति समय की आँधी के थपेड़ों से बचता हुआ एक निश्चित लक्ष्य की ओर बढ़ता जाता है उसकी महत्ता किसी तरह कम नहीं होती। भूषण ने अपनी दृष्टि रीति-युग की विलास प्रवण भावोत्तेजक नग्न-नारी-मूर्ति की ओर से हटाकर उस जगह लगाई जहाँ लाखों-करोड़ों असहाय पुरुषों के प्राणों और कुल-कामिनियों की मर्यादा कच्चे धागे के सहारे अटकी हुई थी, जहाँ उनके धार्मिक विश्वासों पर अकारण चोट पर चोट की जा रही थी। कुछ भी हो इस युग के कवियों में भूषण का सिर सबसे ऊँचा है उनके व्यक्तित्व की होड़ कोई नहीं कर सकता।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भूषण

ब्रह्म के आनन तें निकसे तें अत्यन्त पुनीत तिहूँ पुर मानो।
राम युधिष्ठिर के बरने बलमीकहु ब्यास के अंग सोहानी॥
भूषन यो कलि के कविराजन राजन के गुन गाय नसानी।
पुन्य चरित्र सिवा सरजै सर न्हाय पबित्र भई पुनि बानी॥

राखी हिन्दुबानी हिन्दुवान को तिलक राख्यो
अस्मृति पुरान राखे वेद विधि सुनी में।
राखी रजपूती राजधानी राखी राजन की
धरा में धरम राख्यो राख्यो गुन गुनी में॥
भूषण सुकवि जीति हद मरहट्टन की
देस देस कीरति बखानी तव सुनी में।
साहि के सपूत सिवराज समसेर तेरी
दिल्ली दल दाबि के दिवाल राखी दुनी में॥

इन्द्र जिमि जम्भ पर बाड़व सुअम्भ पर,
रावन सदम्भ पर रघुकुल राज है।
पौन बारिबाह पर सम्भु रतिनाह पर,
ज्यौं सहस्रबाहु पर राम द्विजराज है॥
दावा द्रुम दंड पर चीता मृगझुण्ड पर,
भूषण बितुण्ड पर जैसे मृगराज है।
तेज तम अंस पर कान्ह जिमि कंस पर,
त्यौं मलिच्छ बंस पर सेर सिवराज है॥

गरुड़ को दावा सदा नाग के समूह पर,
दावा नाग जूह पर सिंह सिरताज को।
दावा पुरहूत को पहारन के कुल पर,
पच्छिन के गोल पर दावा सदा बाज को॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भूषण अखंड नव खंड महि मंडल में,
तम पर दावा रवि किरन समाज को।
पूरब पछाँह देश दच्छिन ते उत्तर लौं,
जहाँ पातसाही तहाँ दावा सिवराज को।
तेरे ही भुजान पर भूतल को भार,
कहिबे को सेसनाग दिगनाग हिमाचल है।
तेरो अवतार जम पोसन करन हार,
कछु करतार को न ता मधि अमल है॥
सहित में सरजा समत्थ सिवराज कवि,
भूषन कहत जीवो तेरोई सफल है।
तेरो करवाल करै म्लेच्छन को काल बिनु,
काज होत काल बदनाम धरातल है॥
उद्धत अपार तव दुंदुभी धुकार संग लंघैं,
पारावार बाल वृन्द रिपु गन के।
तेरे चतुरंग के तुरंग के रंगरेज,
साथ ही उड़ात रजपुंज हैं परन के॥
दच्छिण के नाथ सिवराज ! तेरे हाथ चढ़ैं,
धनुष के साथ गढ़ कोट दुरजन के।
भूषन असीसैं, तोहि करत कसीसै पुनि,
बानन के साथ छूटे प्रान तुरकन के॥
निकसत म्यान ते मयूखैं प्रलै भानु कैसी,
फारैं तम तोम ते गयंदन के जाल को।
लागति लपटि कंठ बैरिन के नागिन सी,
रुद्रहिं रिझावै दै दै मुंडन के माल को॥
लाल छितिपाल छत्रसाल महा बाहुबली,
कहाँ लौ बखान करौं तेरी करवाल को।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रति भट कटक कटीले केते काटि काटि,
कालिका सी किलकि कलेऊ देति काल को ॥
तादिन अखिल खलभलैं खल खलक में,
जा दिन सिवाजी गाजी नेक करखत हैं।
सुनत नगारन अगार तजि अरिन की,
दारगन भाजत न बार परखत हैं।
छूटे बार बार छूटे बारन ते लाल,
देखि भूषन सुकवि बरनत हरखत हैं।
क्यों न उतपात होहिं बैरिन के,
झुंडन में कारे घन उमड़ि अँगारे बरखत हैं॥
प्रेतिनी पिसाच रु निसाचर निसाचरिहू,
मिलि मिलि आपुस में गावत बधाई हैं।
भैरों भूत-प्रेत भूरि भूधर भयंकर से,
जुत्थ जुत्थ जोगिनी जमाति जुरि आई हैं॥
किलकि किलकि के कुतूहल करति काली,
डिम-डिम डमरू दिगम्बर बजाई है।
सिवा पूछैं सिव सों समाज आजु कहाँ चली,
काहू पै सिवा नरेस भृकुटी चढ़ाई है॥
साजि चतुरंग सैन अंग में उमंग धार,
सरजा सिवाजी जंग जीतन चलत है।
भूषन भनत नाद बिहद नगारन के,
नदी-नद मद गैवरन के रलत है।
ऐल-फैल खैल-भैल खलक में गैल गैल
गजन की ठैल-पैल सैल उसलत है।
तारा सो तरनि धूरि-धारा में लगत जिमि,
थारा पर पारा पारावार यों हलत है॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बाने फहराने घहराने घंटा गजन के,
नाहीं ठहराने राव राने देस-देस के।
नग भहराने ग्राम नगर पराने सुनि,
बाजत निसाने सिवराज जू नरेस के॥
हाथिन के हौदा उकसाने, कुम्भ कुंजर के,
भौन को भजाने अलि छूटे लट केस के।
दल के दरारेन ते कमठ करारे फूटे,
केरा के से पात बिहराने फन सेस के॥

दारा की न दौर यह रार नहीं खजुवे की
बाँधिबो नहीं है कैधों मीर सहबाल को।
मठ विस्वनाथ को न बास ग्राम गोकुल को
देवी को न देहरा न मन्दिर गोपाल को॥
गाढ़े गढ़ लीन्हें अरु बैरी कतलान कीन्हें
ठौर ठौर हासिल उगाहत है साल को।
बूड़ति है दिल्ली सो सम्हारै क्यों न दिल्लीपति
धक्का आनि लाग्यो सिवराज महाकाल को॥

ऊँचे घोर मन्दिर के अन्दर रहनवारी
ऊँचे घोर मन्दिर के अन्दर रहाती हैं।
कन्द मूल भोग करैं कन्द मूल भोग करैं
तीन बेर खाती सो तो तीन बेर खाती हैं।
भूषन सिथिल अंग भूखन सिथिल अंग
बिजन डुलाती ते वे बिजन डुलाती हैं।
भूषन भनत सिवराज वीर तेरे त्रास
नगन जड़ाती ते वै नगन जड़ाती हैं॥

श्री सरजा सिव तो जस सेत सों होत हैं बैरिन के मुँह कारे।
भूषन तेरे अरुन्न प्रताप सपेत लखे कुनबा नृप सारे॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

साहि तनै तब कोप कृसानु ते बैरि गरे सब पानियवारे ।
एक अचम्भव होत बड़ो तिन ओठ गहे अरि जात न जारे ॥

इन्द्र निज हेरत फिरत गज इन्द्र अरु,
इन्द्र को अनुज हेरै दुगध नदीस कौं ।
भूषन भनत सुर सरिता कौं हंस हेरै,
बिधि हेरै हंस को चकोर रजनीस कौं ॥
साहि तनै सिवराज करनी करी है तैं
जु होत है अचम्भो देव कोटियों तैंतीस कौं ।
पावत न हेरे जस तेरे में हिराने निज,
गिरि कों गिरीस हेरै गिरजा गिरीस कौं ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

९

देव

हिंदी-साहित्य के रीतिकालीन कवियों के काव्य में तत्कालीन समाज की निष्क्रियता झलकती है। उन्होंने कभी किसी नए विषय पर सोचने का साहस नहीं किया। स्थूल रूप और नारी ही उनके चिंतन और अनुभूति का एकमात्र विषय था। समस्त वातावरण कामिनीमय हो गया था। फलतः सारा काव्य-साहित्य संयमहीन कल्पना की उड़ानों द्वारा प्रस्तुत किए गए सौन्दर्य-चित्रों से भर गया। कविवर देवदत्त ने भी अपनी समस्त काव्य-प्रतिभा को इसी संकुचित क्षेत्र में केन्द्रित कर साहित्य भन्डार को रूप और सौन्दर्य के मोहक एवं अभिराम चित्रों से भर दिया।

कवि देवदत्त 'देव' का जन्म सं० १७३० में इटावा के एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण कुल में हुआ था। ये अपने जीवन भर आश्रय-दाताओं की खोज में देश के विभिन्न भागों का पर्यटन करते रहे। औरंगज़ेब का पुत्र आज़मशाह, भवानीदत्त वैश्य, उद्योतसिंह, राजा भोगीलाल आदि इनके प्रमुख आश्रयदाता थे। सभी की प्रशंसा में इन्होंने कुछ न कुछ लिखा है।

इनके ग्रंथों की संख्या ७०-७२ क बताई जाती है लेकिन ये सब उपलब्ध नहीं। इनके प्रमुख ग्रन्थ भाव-विलास, रस-विलास, प्रेम चन्द्रिका, शब्द रसायन हैं। 'जाति-विलास' नामक ग्रंथ में इन्होंने विभिन्न प्रदेशों की स्त्रियों के रूप और गुण का वर्णन किया है। इनके कई ग्रंथ तो ऐसे हैं जो काव्य की कोटि में आते ही नहीं। उदाहरण के लिए 'अष्टयाम' में उन्होंने एक आदर्श राजा की दिनचर्या का वर्णन किया है।

'देव' की कविता का मुख्य विषय प्रेम, सौन्दर्य, नखशिख,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नायिका-भेद, हाव-भाव आदि ही है। वे सौन्दर्य के पारखी हैं पर उनका प्रेमादर्श भी अन्य रीतिकालीन कवियों की तरह वासना-प्रधान है। उनके राधा-कृष्ण साधारण नायक-नायिकाओं की तरह दिनरात भोग-विलास में लिप्त रहते हैं। यही उनकी दिनचर्या है; उन्हें और कोई काम नहीं।

सूरदास ने राधा-कृष्ण की प्रेम-लीला का गान करके अलौकिक प्रेम की जो दिव्य-ज्योति जलाई थी; उसके प्रकाश से अपने आपको वंचित कर इन रीतिकालीन कवियों ने अपनी कुरुचिपूर्ण मनोवृत्ति के कारण कालिमा का संग्रह किया और उसीमें अपने कवि-कर्म का चरमोत्कर्ष मान बैठे। कविवर देव का इष्ट विषय शृंगार-पूर्ण प्रेम और सौन्दर्य-वर्णन ही रहा किन्तु इनके वर्णनों में उच्चकोटि की प्रतिभा के कारण सजीवता और सरसता का जो रूप दृष्टिगत होता है वह रीतिकालीन कवियों में अन्य किसी में नही मिलता।

देव का आचार्यत्व—देव ने अपने काव्य में संस्कृत साहित्य और रीतिकाल के पूर्ववर्ती कवियों से बहुत कुछ लिया लेकिन इनकी विशेषता यह है कि उसे अपनी कल्पना-शक्ति और सूझ-बूझ से नवीनता प्रदान करदी है। कहीं-कहीं सौन्दर्य के असाधारण चित्र प्रस्तुत किए गए हैं। उनकी उत्प्रेक्षाओं से उनके कल्पना-प्राचुर्य और भाषा पर उनके असाधारण अधिकार का पता चलता है।

रस, अलंकार और छन्द शास्त्रमें उनकी अद्भुत पैठ थी। रसवादी कवियों में उन्हें प्रथम स्थान उनके असाधारण ज्ञान और गहरी पैठ के कारण ही प्राप्त है। शृंगार-रस के प्रसंग के नायिका भेद की पृष्ठ भूमि पर उन्होंने जिस प्रेम को चित्रित किया है वह उनकी विलक्षण प्रतिभा का परिचायक है। प्रेम का लक्षण, स्वरूप, महात्म्य उनके विविध रूप आदि सूक्ष्म विषयों पर उनकी प्रतिभा का चमत्कार दर्शनीय है। शृंगारी होने पर भी 'देव' दाम्पत्य-प्रेम को श्रेष्ठ समझते हैं और उसी का समर्थन भी करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शृंगारिक चमत्कार के साथ उनके काव्य में ज्ञान और वैराग्य की भी अद्भुत छटा देखने को मिलती है। जीवन की सन्ध्या में उन्होंने भक्ति, ज्ञान और वैराग्य की जो स्वर लहरी प्रवाहित की वह भले ही उनकी आत्मा का सबसे प्रधान स्वर न हो किन्तु उसमें काव्यत्व और वैराग्य तत्व की दृष्टि से कोई न्यूनता परिलक्षित नहीं होती।

संक्षेप में, आचार्यत्व की दृष्टि से देव की काव्य सामग्री विविधता के साथ पूर्णता की जिस सीमा पर पहुँचती है; निश्चय ही रीतिकाल का अन्य कोई कवि उन सीमाओं का स्पर्श नहीं कर पाता। 'भवानी विलास' और 'भाव प्रकाश' ग्रन्थों की रचना द्वारा उन्होंने अपने आचार्यत्व की अमिट छाप छोड़ी है।

'देव' की ब्रजभाषा प्रांजल, कोमल और प्रभावपूर्ण है। श्रुतिमधुर शब्दों का नैसर्गिक रूप में जैसा प्रयोग देव ने किया मतिराम और पद्माकर के सिवा रीतिकाल का अन्य कोई कवि न कर पाया।

अपनी अनुप्रास-प्रियता के कारण उन्होंने अपने कवित्त-सवैयों को सजाया भी खूब है। देव की भाषा में भूषण आदि की अपेक्षा शब्दाडम्बर बहुत कम है। वस्तुतः भाव की प्रधानता को लेकर चलने के कारण भाषा की कृत्रिमता को वे सहज ही में बचा गये हैं। श्रुतिकटु शब्द तो उनकी रचना में नहीं के बराबर हैं—विशेषणों की छटा तो सर्वत्र उपलब्ध होती है।

देव रीतिकाल के एक अत्यंत प्रतिभा-सम्पन्न कवि हैं। उनके काव्य में युग का वातावरण पूरी तरह प्रतिबिंबित होता है। उसमें रीतिकालीन काव्य की सारी शक्ति और सारी कमज़ोरियाँ मौजूद हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

देव

शरद

पाँयन नूपुर मंजु बजैं, कटि किंकिनी में धुनि की मधुराई।
साँवरे अंग लसै पट पीत, हिये हुलसै बनमाल सुहाई॥
माथे किरीट बड़े दृग चंचल मन्द हँसी मुख चन्द जुन्हाई।
जै जग मन्दिर दीपक सुन्दर, श्री ब्रज दूलह देव सहाई॥

देव, मैं सीस बसायो सनेह सों, भाल मृगम्मद बिंदु के भाख्यो।
कंचुकि मैं चुपर्‌यों करि चोवा, लगाय लियो उर सो अभिलाख्यो॥
लै मखतूल गुहे गहने, रस मूरतिवंत सिंगार कै चाख्यौ।
साँवरे लाल को साँवरो रूप मैं नैनन को कजरा करिराख्यौ॥

धार में धाय धँसी निरधार ह्वै, जाय फँसी, उकसीं न उधेरी।
री! अगराय गिरीं गहिरी, गहि फेरे फिरीं न, घिरी नहिं घेरी॥
देव कछू अपनो बस ना, रस लालच लाल चितै भईं चेरी।
बेगि ही बूड़ि गईं पखियाँ, अखियाँ मधु की मखियाँ भईं मेरी॥

देव न देखत हो दुति दूसरी देखे हैं जा दिन तै ब्रजभूप मैं,
पूरि रही री वही धुनि कानन आन न आनन ओप अनूप मैं।
ये अखियाँ सखियाँ न हमारी जो जाय मिली जल बुन्द,ज्यौं कूप में;
कोटि उपाइ न पाइए फेरि, समाइ गईं रँगराइ के रूप में॥

जब ते कँवर कान्ह रावरी कलानिधान
कान परी बानी वाके सुजस कहानी सी।
तब ही ते देव देखी देवता सी हँसति सी
खीझति सी रीझति सी रूसति रिसानी सी॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

छोही सी छली सी छीनि लीनी सी छकी सी छीन
जकी सी चकी सी लागी थकी थहरानी सी।
बीधी सी बधी सी विष बूड़ी सी विमोहित सी
बैठी बाल बकति बिलोकत बिकानी सी॥
औचक अगाध सिंधु स्याही कौ उमँग आयौ,
तामें तीनों लोक बूड़ि गये एक संग में।
कारे कारे कागद लिखे ज्यों कारे आखर,
सुन्यारे करि बाँचै कौन नाचे चित भंग में॥
आँखिन में तिमिर, अमावस की रैनि अरु
जंबू रस बूँदि जमुना जल तरंग में।
यों ही मन मेरो मेरे काम को न रह्यौ देव।
स्याम रँग ह्वै करि समान्यौ स्याम रँग में॥
रीझि रीझि, रहसि रहसि, हँसि हँसि उठैं,
साँसे भरि, आँसू भरि, कहत दई दई;
चौंकि चौंकि चकि चकि, उचकि उचकि देव,
जकि जकि, बकि बकि, परत बई बई।
दुहुन को रूप गुन दोऊ बरनत फिरैं,
घर न थिरात रीति नेह की नई नई;
मोहि मोहि मोहन को मन भयौ राधिका में
राधा मन मोहि मोहि मोहन मई मई॥
बरुनी बघम्बर में गूदरी पलक दोऊ,
कोये राते बसन भगोंहै भेस रखियाँ।
बूड़ी जल ही में दिन जामिनिहूँ जागैं, भौहैं,
धूम सिर छायो बिरहानल बिलखियाँ॥
आसूँ ज्यौं फटिक माल, लाल डोरे सेली पैन्हि,
भई है, अकेली तजि चेली सँग सखियाँ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दीजिए दरस देव कीजिये सँजोगिनि सु
जोगिनि ह्वै बैठी ये वियोगिनि की अखियाँ ।।
झहरि झहरि झीनी बूँद है परति मानों,
घहरि घहरि घटा घेरी है गगन में ।
आनि कह्यो स्याम मो सौं, चलौ झूलिबे को आज,
फूली ना समानी भई ऐसी हौं मगन में ।।
चाहत उठ्योई उठि गई सो निगोड़ी नींद,
सोइ गए भाग मेरे जागि . वा जगन में ।
आँख खोलि देखौं तो न घन हैं न घनस्याम,
वेई छाई बूँदैं मेरे आँसु ह्वै दृगन में ।।
फटिक सिलान सों सुधारयो सुधा मन्दिर,
उदधि दधि को सो अधिकाई उमगै अमन्द;
बाहेर ते भीतर लौं भीति न दिखैये देव
दूध कैसी फेनु फैलो आँगन फरस बन्द ।
तारा सी तरुनि तामें ठाढ़ी झिलिमिलि होति,
मोतिन की जोति मिलि मल्लिका को मकरन्द;
आरसी से अम्बर आभा सी उज्यारी लागै,
प्यारी राधिका को प्रतिबिम्ब सो लगत चन्द ।।
आसपासपूरन प्रगास के पगार सूझैं,
बननि अगार दीठ गली औ निबरते ।
पारावार पारद अपार दसों दिसा बूड़ी,
चंड ब्रह्मण्ड उतरात बिधि बर तें ।।
सारद जुन्हाई जन्हु जाई धार सहस सों
धाई सोभा सिंधु नभ सेत गिरिबर तें ।
उमड़ो परत जोति मण्डल अखंड सुधा
मण्डल मही में बिधु मण्डल बिबर तें ।।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

डार द्रुम पालन बिछौना नव पल्लव के,
सुमन झिंगोला सोहै तन छवि भारी दै।
पवन झुलावै केकि कीर बतरावै देव
कोकिल हलावै हुलसावै करतारी दै॥
पूरित पराग सों उतारा करै राई नोन,
कुंद कली नायिका लतान सिर सारी दै।
मदन महीप जू को बालक बसन्त ताहि,
प्रातहि जगावत गुलाब चटकारी दै॥

साँसन ही सों समीर गयो अरु आँसुन ही सब नीर गयो ढरि;
तेज गयो गुन लै अपनो अरु भूमि गई तनु की तनुता करि।
जीव रह्यो मिलिबेई कि आस, कि आसहू पास अकास रह्यो भरि;
जा दिन तें,मुख फेरि, हँसे हरि, हेरि हियो जु लियो हरिजू हरि॥

बागो बन्यों जरपोस को, ता मँहि ओस को हार तन्यो मकरी ने।
पानी में पाहन पोत चल्यो चढ़ि कागद की छतुरी सिरदीने।
काँख में बाँधिकै पाँख पतंग के, देव सु संग पतंग को लीने।
मोम के मन्दिर माखन को मुनि बैठ्यो हुतासन आसन कीने॥

जाके न काम न क्रोध बिरोध न लोभ छुवै नहिं छोभ को छाहौ।
मोह न जाहि रहै जग बाहिर, मोल जवाहिर तौ अति चाहौ॥
बानी पुनीत ज्यौं देवधुनी रस आरद सारद के गुन गाहौ।
सील ससी, सबिता छबिता, कबिताहि रचै, कवि ताहि सराहौ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

१०

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

हिन्दी-साहित्य के रीतिकाल में कविता जन-जीवन से बहुत दूर जा पड़ी थी। रूढ़ि ने कवियों की सर्वतोमुखी भावना नष्ट कर दी थी। सामयिक घटनाओं से उन्हें कोई सरोकार न था। वे कछुए की तरह अपनी दृष्टि अपने में ही समेटे बैठे हुए थे; कभी विवश होकर गर्दन बाहर निकालते भी थे तो क्षण भर के लिए। लोकगत चेतना का लोप हो गया था इसीलिए उनके काव्य में ऐतिहासिकता का अभाव है। सन् ५७ के गदर ने राष्ट्र के सामाजिक और राजनीतिक जीवन में नई जान डाल दी; नव प्रभात का उदय हुआ और साहित्य में नई काव्य-धारा अप्रतिहत गति से बह निकली।

इस स्वर्णिम प्रभात के सर्वप्रथम वैतालिक और हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल के जनक थे श्री० भारतेन्दु हरिश्चन्द्र।

भारतेन्दु बाबू का जन्म सं० १९०७ में काशी के एक प्रतिष्ठित परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम था गोपालचन्द्र उपनाम गिरधरदास। इस जन्म जात कवि में पिता के सभी संस्कार पूर्णरूप से वर्तमान थे। ३४ वर्ष के छोटे से जीवन में भारतेन्दु ने साहित्य के सभी अंगों को समृद्ध किया। उन्होंने गद्य साहित्य का सूत्रपात किया, सर्वप्रथम नाटक-रचना की, अन्य भाषाओं की साहित्यिक कृतियों के अनुवाद किए, पत्रकारिता को जन्म दिया और काव्य-क्षेत्र में नवयुग का प्रवर्त्तन कर उसे नए आदर्श और नए मूल्य प्रदान किए। जीवन और साहित्य के पारस्परिक सम्बन्धों की शिथिलता को दूर कर उन्हें फिर से दृढ़ करने का श्रेय भारतेन्दु को ही है।

भारतेन्दु काल उग्र राष्ट्रीयता का युग नहीं था। इसकी सबसे महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति यही थी कि जनता में राजनीतिक चेतना जाग्रत हो

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इस तरह भारतेन्दु काव्य में हमें सर्वतोमुखी जाग्रति की प्रेरणा मिलती है। वह यथार्थवादी है और उसमें हमें भावानुभूति की सचाई के दर्शन होते हैं। इसके साथ ही साथ भक्ति और शृङ्गार को लेकर भी भारतेन्दु ने जो कुछ लिखा है, वह कम महत्त्वपूर्ण नहीं। भक्ति और शृङ्गार उनके व्य दो महत्त्वपूर्ण अंग थे। राजनीतिक कविताओं में काव्य-प्रतिभा के प्रदर्शन के लिए बहुत स्थान नहीं था। लेकिन उनकी शृङ्गार सम्बन्धी सूक्तियाँ उनके सामने ही सहृदयों का कण्ठहार हो गई थीं। उनके कृष्ण भक्ति के पदों में अष्ट-छाप के कवियों जैसा माधुर्य और तन्मयता दिखाई देती है। उनकी कविता में चटक-मटक नहीं; सीधी-सादी भाषा में उन्होंने अपने आंतरिक उद्गार व्यक्त कर दिए हैं। उनके कवित्त सवैयों में रीति कालीन रूढ़िबद्ध काव्य की जड़ता नहीं वरन् जीवन का स्पन्दन है। उनके सवैये घनानन्द की टक्कर के हैं। भावानुभूति की सचाई के कारण उनमें नव जीवन का स्फुरण हुआ है।

भारतेन्दु ने भाव-क्षेत्र में क्रान्ति को जन्म दिया लेकिन अपनी भाषा वही रखी जो परम्परा से चली आ रही थी। किन्तु उनकी भाषा में दुरूहता नहीं; कृत्रिम शब्दों का उन्होंने बहिष्कार किया है। उनका ध्यान भाव-प्रदर्शन पर केन्द्रित था। उक्ति वैचित्र्य और चमत्कार प्रियता उनमें नहीं थी—गम्भीर व्यक्ति की इस ओर रुचि हो भी कैसे सकती है? अलंकार-भार से दबी हुई भाषा को उन्होंने मुक्ति दिलाई। जहाँ तहाँ उन्होंने खड़ी बोली का भी प्रयोग किया है पर वह केवल प्रयोग के लिए।

हिन्दी-साहित्य के आधुनिक-काल के प्रथम उत्थान सन् १८६५—१९०० पर इस क्रान्तिचेता युग प्रवर्त्तक कवि का व्यक्तित्व पूरी तरह छाया हुआ है। इस ३५ वर्ष की अवधि को भारतेन्दु-काल का नाम देकर। हिन्दी-साहित्य के इतिहासकारों ने उनका आभार स्वीकार किया है और उनका उचित सम्मान किया है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उठी थी। यह सत्य है कि इस चेतना का श्रीगणेश राजभक्ति के रूप में हुआ पर यह भी सत्य है कि इसी ने विकसित होकर देशभक्ति का रूप धारण किया। एक समय था जब भारतेन्दु हिन्दुओं को 'डिस-लायल' कहने वालों को कड़ी फटकार देते हैं—'डिसलायल हिंदुन कहत कहाँ मूढ़ ते लोग।' वस्तुतः राष्ट्रीयता का रूप बराबर बदलता जा रहा था। इसे हम चाटुकारिता नहीं कह सकते क्योंकि उस समय तक भारतीयों को आशा थी कि अंग्रेज़ अपने वायदों को निभायेंगे। लेकिन धीरे-धीरे दासता का अनुभव कटुतर होता गया और वे यह समझ गए कि अंग्रेज़ों का उद्देश्य अपने वायदों को पूरा करने का नहीं। फलतः विरोध भावना तीव्रतर होती गई। वे अंग्रेज़ी शासन और सभ्यता का मतलब अच्छी तरह समझ गए। यह कटुता भारतेन्दु की इस मुकरी में पूरी तरह लक्षित होती है—

भीतर भीतर सब रस चूसै, हँसि-हँसि कैं तन मन धन मूसै;
जाहिर बातनु में अति तेज़, क्या सखि साजन ना अंग्रेज़।

उस युग में इस तरह के शब्द मुँह से निकालना बड़े साहस का काम था। देश की आर्थिक स्थिति भी बहुत गिरी हुई थी। भारतेन्दु ने इस दुरवस्था के बड़े करुणोत्पादक चित्र प्रस्तुत किए हैं और आर्थिक स्वाधीनता के महत्त्व पर ज़ोर दिया है। 'पसु समान सब अन्न खात पीवत गंगाजल; धन विदेस चलि जात तऊ जिय होत न चंचल।' इस हीन दशा में भी सन्तुष्ट रहने वाली भारतीय जनता को उन्होंने सोचने-विचारने पर विवश किया। उनकी होली में देखिए कितना सप्राण व्यंग्य है—'जुरि आए फ़ाके मस्त, होली होय रही; घर में भूँजी भाँग नहीं है तो भी न हिम्मत पस्त, होली होय रही।' और—'आवहु सबहु सब मिलि कैं रोवहु भारत भाई, हा! हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।'

सामाजिक दुरवस्था के मूल कारणों को समझते हुए भारतेन्दु ने समाज-सुधारों पर भी बराबर ज़ोर दिया। उनकी दृष्टि व्यापक और उदार थी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इस तरह भारतेन्दु काव्य में हमें सर्वतोमुखी जाग्रति की प्रेरणा मिलती है। वह यथार्थवादी है और उसमें हमें भावानुभूति की सचाई के दर्शन होते हैं। इसके साथ ही साथ भक्ति और श्रृङ्गार को लेकर भी भारतेन्दु ने जो कुछ लिखा है, वह कम महत्त्वपूर्ण नहीं। भक्ति और श्रृङ्गार उनके व्य दो महत्त्वपूर्ण अंग थे। राजनीतिक कविताओं में काव्य-प्रतिभा के प्रदर्शन के लिए बहुत स्थान नहीं था। लेकिन उनकी श्रृङ्गार सम्बन्धी सूक्तियाँ उनके सामने ही सहृदयों का कण्ठहार हो गई थीं। उनके कृष्ण भक्ति के पदों में अष्टछाप के कवियों जैसा माधुर्य और तन्मयता दिखाई देती है। उनकी कविता में चटक-मटक नहीं; सीधी-सादी भाषा में उन्होंने अपने आंतरिक उद्गार व्यक्त कर दिए हैं। उनके कवित्त सवैयों में रीति कालीन रूढ़िबद्ध काव्य की जड़ता नहीं वरन् जीवन का स्पन्दन है। उनके सवैये घनानन्द की टक्कर के हैं। भावानुभूति की सचाई के कारण उनमें नव जीवन का स्फुरण हुआ है।

भारतेन्दु ने भाव-क्षेत्र में क्रान्ति को जन्म दिया लेकिन अपनी भाषा वही रखी जो परम्परा से चली आ रही थी। किन्तु उनकी भाषा में दुरूहता नहीं; कृत्रिम शब्दों का उन्होंने बहिष्कार किया है। उनका ध्यान भाव-प्रदर्शन पर केन्द्रित था। उक्ति वैचित्र्य और चमत्कार प्रियता उनमें नहीं थी—गम्भीर व्यक्ति की इस ओर रुचि हो भी कैसे सकती है? अलंकार-भार से दबी हुई भाषा को उन्होंने मुक्ति दिलाई। जहाँ तहाँ उन्होंने खड़ी बोली का भी प्रयोग किया है पर वह केवल प्रयोग के लिए।

हिन्दी-साहित्य के आधुनिक-काल के प्रथम उत्थान सन् १८६५—१९०० पर इस क्रान्तिचेता युग प्रवर्त्तक कवि का व्यक्तित्व पूरी तरह छाया हुआ है। इस ३५ वर्ष की अवधि को भारतेन्दु-काल का नाम देकर। हिन्दी-साहित्य के इतिहासकारों ने उनका आभार स्वीकार किया है और उनका उचित सम्मान किया है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हरिश्चन्द

यह संग मैं लागिये डोलैं सदा बिन देखे न औरन आनती हैं।
छिन हूँ जो वियोग परै 'हरिचन्द' तौ चाल प्रलै की सु ठानती हैं।
बरुनी में थिरैं न झपैं उझपैं पल में न समाइबो जानती हैं॥
पिय प्यारे तिहारे निहारे बिना अँखियाँ दुखियाँ नहीं मानती हैं॥
पिया प्यारे बिना यह माधुरी मूरति औरन को अब पेखिये का।
सुख छाँड़ि कैं संगम को तुमरे इन तुच्छन को अब लेखिये का।
'हरिचन्द' जू हीरन को बेवहार कै कांचन को लै परेखिये का।
जिन आँखिन में तुव रूप बस्यौ उन आँखिन सों अब देखिये का॥

इन दुखियान को न चैन सपनेहूँ मिल्यौ,
तासों सदा व्याकुल विकल अकुलायँगी।
प्यारे हरिचन्द जू की बीती जानि औधि प्रान,
चाहत चलै पै ये तो संग न समायँगी।
देख्यो एक बारहू न नैन भरि तोहि यातें
जौन जौन लोक जैहैं तहाँ पछतायँगी॥
बिना प्रान प्यारे भये दरस तिहारे हाय;
मरेहू पै आँखें ये खुली ही रहि जायँगी॥
गुरुजन वरजि रहेरी बहु बारि मोंहि,
संक तिनहू की छोड़ि प्रेम रँग राची मैं।
त्योंही बदनामी लई कुलटा कहाइ के
कलंकिन कहाई ऐसी प्रीति लोक खाँची मैं॥
कहि 'हरीचन्द' सब छोड्यो प्रान प्यारे काज,
याते जग झूठो भयो रही एक साँची मैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नेह के बजाय बाज छोड़ि सब लाज आज,
घूँघट उघारि बृजराज हेत. नाची मैं ॥
देखि घनस्याम, घनस्याम की सुरति करि,
जिय में विरह घटा घहरि-घहरि उठै।
त्योंही इन्द्रधनु बगमाल देखि बनमाल,
मोतीलर पी की जिय लहरि लहरि उठै ॥
'हरिचंद' मोर पिक धुनि सुनि बंसी नाद,.
बाँको छबि बार बार छहरि छहरि उठै।
देखि देखि दामिनि की दुगुन दमक पीत—
पट छोर मेरे हिय फहरि फहरि उठै ॥
कूकै लगीं कोइलैं कदंबन पै बैठि फेरि
धोए धोए पात हिलि हिलि सरसै लगे।
बोलै लगे दादुर मयूर लगे नाचै फेरि
देखि कै सँजोगी जन हिय हरसै लगे ॥
हरी भई भूमि सीरी पवन चलन लागी
लखि 'हरिचन्द' फेर प्रान तरसै लगे।
फेरि झूमि झूमि बरषा की ऋतु आई फेरि
बादर निगोरे झुकि झुकि बरसै लगे ॥
आजु लौं जौ न मिले तो कहा
हम तो तुमरे सबभाँति कहावैं।
मेरो उराहनो है कछु नाहिं
सबै फल आपुने भाग को पावैं ॥
जो हरिचन्द भई सो भई
अब प्रान चले चहैं तासों सुनावैं।
प्यारे जू है जग की यह रीति
बिदा की समै सब कंठ लगावैं ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हौं तो याही सोच में विचारत रही री काहे,
दरपन हाथ तें न छिन बिसरत है।
त्यौं ही हरिचन्द जू वियोग औ सँयोग दोऊ
एक से तिहारे कछु लखि न परत है॥
जानो आज हम ठकुरानी तेरी बात तू तौ,
परम पुनीत प्रेम पथ बिचरत है॥

पद

नवल बन फूलीं द्रुम बेली।
लहलह लहकहिं महमह महकहिं मधुर सुगंधहिं रेली॥
प्रकृति नवोढ़ा सजे खरी मनु भूषन बसन बनाई।
आँचर उड़त बात बस फहरत प्रेम धुजा लहराई॥
गूँजहिं भँवर बिहंगम डोलहिं बोलहिं प्रकति बधाई।
पुतली सी जित तित तितलीगन फिरहिं सुगंध लुभाई॥
लहरहिं जल लहकहिं सरोज मन हिलहिं पात तरु डारी।
लखि रितुपति आगम सगरे जग मनहुँ कुलाहल भारी॥
कहाँ करुनानिधि केसव सोये।
जागत नेक न यद्यपि बहु बिधि भारतवासी रोये॥
इक दिन वह हो जब तुम छिन नहिं भारत हित बिसराये।
इतके पसु गज कों आरत लखि आतुर प्यादे धाये॥
इक इक दीन हीन नर के हित तुम दुखतैं अकुलाई।
अपनी संपति जानि इनहि तुम रच्यो तुरन्तहि धाई॥
प्रलयकाल सम जौन सुदरसन असुर प्रान संहारी।
ताकी धार भई अब कुण्ठित हमरी बेर मुरारी॥

गङ्गा-छबि

नव उज्ज्वल जलधार, हार हीरक सी सोहति।
बिच-बिच छहरति बूँद मध्य मुक्ता-मनि पोहति॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

लोल लहर लहि पवन एक पै इक इमि आवत।
जिमि नर-गन मन विविध मनोरथ करत मिटावत॥
सुभग-स्वर्ग-सोपान-सरिस सबके मन भावत।
दरसन मज्जन पान त्रिविध भय दूर मिटावत॥
श्री हरि-पद-नख-चन्द्रकांत-मनि-द्रवित सुधारस।
ब्रह्म-कमंडल-मंडल, भव-खंडन सुर-सरवस॥
शिव-सिर मालति-माल, भगीरथ-नृपति-पुन्य फल।
ऐरावत-गज गिरि-पति-हिम-नग-कंठहार कल।
सगर-सुवन सठ सहस परस जल मात्र उधारण।
अगिनत धारा रूप धारि सागर संचारण॥
कासी कहँ प्रिय जानि ललकि भेंट्यो उठि धाई।
सपने हू नहिं तजी, रही अंकम लपटाई॥
कहूँ बँधे नव घाट उच्च गिरिवर सम सोहत।
कहुँ छतरी, कहुँ मढ़ी, बढ़ी मन मोहत जोहत॥
धवल धाम चहुँ ओर फरहरत धुजा पताका।
घहरत घंटा धुनि धमकत धौंसा करि साका॥
मधुरी नौबत बजत, कहूँ नारी-नर गावत।
वेद पढ़त कहुँ द्विज, कहुँ जोगी ध्यान लगावत॥
कहुँ सुन्दरी नहात बारि कर-जुगुल उछारत।
जग अम्बुज मिलि मुक्तागुच्छ मनु सुच्छ निकारत॥
धोवत सुन्दरि बदन करत अति ही छबि पावत।
बारिधि नाते ससि कलंक मनु कमल मिटावत॥
सुन्दरि सखि मुख नीर मध्य इमि सुन्दर सोहत।
कमल बेलि लहलही नवल कुसुमन मन मोहत॥
दीठि जहीं जहँ जात रहत तितही ठहराई।
गंगा छबि हरिचन्द कछू बरनी नहिं जाई॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

११

हरिऔध

सन् १६०० ई० में सरस्वती के प्रकाशन के साथ-साथ हिंदी गद्य-पद्य के लिए समान भाषा—खड़ी-बोली—चाहने वालों की विजय को स्थायित्व मिल गया। भारतेन्दु-युग भाव-क्रान्ति का युग था, द्विवेदी-युग में भाषा का परिष्कार हुआ। भाषा में अभी लाक्षणिकता और अभिव्यंजना शक्ति का पूर्ण विकास नहीं हुआ था लेकिन कवियों की मनोदृष्टि बदल गई थी। उनमें देश, समाज और सभ्यता के प्रति प्रेम-भाव उदय हो चुका था। यह बदली हुई मनोदृष्टि और भाषा की शक्ति सर्वप्रथम श्री० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के प्रिय-प्रवास में प्रकट हुई।

हरिऔध जी द्विवेदी-युग के कवि हैं लेकिन उन्होंने द्विवेदी जी के प्रभाव-क्षेत्र से बाहर रहकर ही सरस्वती की सेवा की।

उनका जन्म निजामाबाद जिला आज़मगढ़ में सं० १६२२ में हुआ था। इनके पिता का नाम भोलासिंह था। घर पर ही अध्ययन करके इन्होंने हिंदी संस्कृत, उर्दू और फ़ारसी भाषाओं का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। पहले क़ानूनगो और सदर-क़ानूनगो की हैसियत से कार्य किया। अवकाश ग्रहण करने के बाद फिर जीवन-भर साहित्य सेवा की। काफ़ी समय तक काशी-विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य किया। सं० २००२ में आपका स्वर्गवास हो गया।

हरिऔध जी की प्रसिद्धि उनके दो महाकाव्यों—प्रिय-प्रवास और वदेही-वनवास—के कारण हैं। उन्होंने काव्योपवन, प्रेम-पुष्पोपहार, प्रेम-प्रपंच आदि स्फुट-काव्यों की भी रचना की है। इसके अतिरिक्त उन्होंने दो उपन्यास, हिंदी-साहित्य का इतिहास और आलोचनात्मक-निबंध भी लिखे हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हरिऔध जी की ख्याति का मूल-आधार प्रिय प्रवास है। यह खड़ी-बोली का प्रथम महाकाव्य है। इसकी रचना भिन्नतुकांत छंदों में हुई है। हरिऔध जी में लोक-संग्रह का भाव बहुत प्रबल है। भारतीय आदर्शों के लिए उनके हृदय में अटूट श्रद्धा है। इस चरित्र-प्रधान महाकाव्य में हरिऔध जी ने अपनी समर्थ लेखनी से कृष्ण और राधा का—जिन्हें रीतिकालीन कवियों के हाथों में पड़कर निरंतर विलासिता के पंक में गोते लगाने पड़े थे, उद्धार कर दिया। कृष्ण एक लोकसेवारतआदर्श महापुरुष के रूप में हमारे सामने आए। कृष्ण का यह स्वरूप 'रातिकों केलिअघाने नहीं दिन ही में लला पुनि घात लगाई'—वाले रीतिकालीन कृष्ण से सर्वांश में भिन्न है। यहाँ तो वे हमें निरंतर सेवा-कार्य में रत दीख पड़ेंगे—

"विपत्ति से रक्षण सर्वभूत का
सहाय होना असहाय जीव का।
उबारना संकट से स्वजातिका"

कितना महान् अंतर है एक ही व्यक्ति के दो चित्रों में! प्रिय-प्रवास के कृष्ण बहुत-कुछ तुलसी के राम के प्रतिरूप दिखाई पड़ते हैं—शील, सौन्दर्य और शक्ति के प्रतीक! वे एक आदर्श मानव हैं—जिसका जीवन लोकोत्पीड़कों और अत्याचारियों के दमन में ही बीतता है।

प्रिय-प्रवास की राधा का चरित्र भी अत्यन्त उत्कृष्ट है। वह वियोग के दिनों में जायसी की नागमती और सूर की गोपियों की तरह रो-पीटकर आसमान सिर पर नहीं उठा लेतीं—उनमें आश्चर्य-जनक सहनशीलता है और लोक-कल्याण की भावना कूट-कूट कर भरी हुई है। यह सच है कि उसके मानस में वियोग-वह्नि धधक रही है पर वह उसे अपने अंतर में ही छिपाए है। वह तो बस यह चाहती है कि कृष्ण जहाँ भी रहें सुख से रहें और जाति के हित में लगे रहें—'प्यारे जीवें जगहित करें गेह चाहे न आवें।" उसकी त्याग-भावना

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सराहनीय है। इधर, वह स्वयं भी—

> 'संलग्ना हो विविध कितने सांत्वना-कार्य में भी,
> वे सेवा थीं सतत करतीं वृद्ध रोगी-जनों की।'

राधा का जो अभूतपूर्व चित्र हरिऔध ने उपस्थित किया है उसमें कहीं वासना की गन्ध भी नहीं वरन् उसके आगे आदर से सिर झुक जाता है।

यशोदा के चरित्र में माता के निःस्वार्थ और निश्छल स्नेह का अविरल स्रोत प्रवाहित होता है। कृष्ण के वियोग में उनका विलाप अत्यंत करुणोत्पादक है—भला, जिस गाय का बछड़ा उसकी आँख से अलग हो उसकी बेचैनी का क्या ठिकाना! प्राण के वियोग में जीवन कैसा?

> "उद्विग्ना औ' विकल विपुला क्यों न सो धेनु होगी;
> प्यारा लैरू अलग जिसकी आँख से हो गया हो।
> ऊधो! कैसे व्यथित फणि सो जी सकेगा बता दो,
> जीवोन्मेषी रतन जिसके शीश का खो गया हो।"

प्रिय-प्रवास का प्रकृति-चित्रण भी कहीं-कहीं बड़ा सुन्दर बन पड़ा है।

प्रिय-प्रवास में संस्कृत गर्भित और सरल दोनों तरह की भाषा मिलती है। हरिऔध जी दोनों तरह की भाषा लिखने में सिद्धहस्त हैं। ब्रजभाषा, खड़ी बोली, संस्कृत, उर्दू पर उनका समान अधिकार दिखाई पड़ता है। 'वैदेही-बनवास' की भाषा बहुत सरल है। प्रिय-प्रवास की भाषा में माधुर्य भी है और काव्यत्व भी। द्विवेदी-युग के प्रारम्भ में भाषा में जो कर्कशता पाई जाती थी, हरिऔध ने उसे दूर कर दिया। 'रसकलश' की रचना उन्होंने रीतिकालीन शैली में की है। उन्होंने भाषा के क्षेत्र में नए-नए प्रयोग किये और सभी में उन्हें पूरी सफलता मिली।

प्रिय-प्रवासकार को लोक-सेवा के आदर्श में अटूट विश्वास है और वही आदर्श लेकर वह हमारे सामने उपस्थित हुए हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हरिऔध

रो रो चिन्ता-सहित दिन को राधिका थीं बिताती,
आँखों को थीं सजल रखतीं उन्मना थीं दिखातीं
शोभा वाले जलद-वपु की हो रहीं चातकी थीं,
उत्कण्ठा थी परम प्रबला वेदना वर्द्धिता थीं ।।
बैठी खिन्ना एक दिवस वे गेह में थीं अकेली,
आके आँसू दृग-युगल में थे धरा को भिगोते।
आई धीरे इस सदन में पुष्प सद्गन्ध को ले,
प्रातः वाली सुपवन इसी काल वातायनों से ।
आके पूरा सदन उसने सौरभीला बनाया,
चाहा सारा-कलुष तन का राधिका के मिटाना
जा बूँदें थीं सजल दृग के पक्ष्म में विद्यमाना,
धीरे धीरे क्षिति पर उन्हें सौम्यता से गिराया।।
संतापों को विपुल बढ़ता देख के दुःखिता हो,
धीरे बोली सदुख उससे श्रीमती राधिका यों
प्यारी प्रातः पवन इतना क्यों मुझे है सताती;
क्यों तू है कलुषित हुई काल की क्रूरता से।।
क्यों होती है निठुर इतनी क्यों बढ़ाती व्यथा है,
तू है मेरी चिर परिचिता तू हमारी प्रिया है।
मेरी बातें सुन मत सता छोड़ दे वामता को,
पीड़ा खो के प्रणतजन की है बड़ा पुण्य होता ।।
मेरे प्यारे नव जलद से कंज से नेत्र वाले,
जाके आये न मधुवन से औ न भेजा सँदेसा ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मैं रो रो के प्रिय-विरह में बावली हो रही हूँ,
जा के मेरी सब दुख-कथा श्याम को तू सुना दे ॥
हो पाये जो न यह तुझसे तो क्रिया चातुरी से,
जाके रोने-विकल बनने आदि ही को दिखा दे ।
चाहे लादे प्रिय निकट से वस्तु कोई अनूठी,
हा हा ! मैं हूँ मृतक बनती प्राण मेरा बचादे ॥
तू जाती है सकल थल ही वेगवाली बड़ी है,
तू है सीधी तरल हृदया ताप उन्मूलती है ।
मैं हूँ जी में बहुत रखती वायु तेरा भरोसा,
जैसे हो ऐ भगिनि बिगड़ी बात मेरी बना दे ॥
कालिन्दी के तट पर घने रम्य उद्यानवाला,
ऊँचे-ऊँचे धवल-गृह की पंक्तियों से प्रशोभी ।
जो है न्यारा नगर मथुरा प्राणप्यारा वहीं है,
मेरा सूना सदन तज के तू वहाँ शीघ्र ही जा ॥
जाते-जाते अगर पथ में क्लान्त कोई दिखावे,
तो तू जा के निकट उसकी क्लान्तियों को मिटाना ।
धीरे-धीरे परस करके गात उत्ताप खोना,
सद्गंधों से श्रमित जन को हर्षितों-सा बनाना ॥
लज्जा-शीला-युवति पथ में जो कहीं दृष्टि आवे,
होने देना विकृत-वसना तो न तू सुन्दरी को ।
जो थोड़ी भी श्रमित वह हो गोद ले श्रान्ति खोना,
होठों की औ' कमल-मुख की म्लानतायें मिटाना ॥
जो पुष्पों के मधुर-रस को साथ सानन्द बैठे,
पीते होवें भ्रमर-भ्रमरी सौम्यता तो दिखाना ।
थोड़ा-सा भी न कुसुम हिले औ' न उद्विग्न हों वे,
क्रीड़ा होवे नहिं कलुषिता केलि में हो न बाधा ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तेरी जैसी मृदु-पवन से सर्वथा शान्ति-कामी,
कोई रोगी पथिक पथ में जो कहीं भी पड़ा हो।
तो तू मेरे सकल दुख को भूल के धीर होके,
खोना सारा कलुष उसका शान्तिसर्वाङ्ग होना।
कोई क्लान्ता कृषक-ललना खेत में जो दिखावे,
धीरे-धीरे परस उसको क्लान्ति सर्वाङ्ग खोना।
जाता कोई जलद यदि हो व्योम में तो उसे ला,
छाया सारी सुखद करना, शीश तप्तांगना के॥
उद्यानों में सु-उपवन में वापिका में सरों में,
फूलोंवाले नवल तरु में पत्रशोभी द्रुमों में।
आते जाते न रस रहना औ' न आसक्त होना,
कुंजों में औ' कमल-कुल में बीथिका में बनों में॥
जाते-जाते पहुँच मथुरा-धाम में उत्सुका हो,
न्यारी शोभा वर नगर की देखना मुग्ध होना।
तू होवेगी चकित लख के मेरु से मन्दिरों को,
आभावाले कलश जिनके दूसरे अर्क से हैं॥
तू पूजा के समय मथुरा मन्दिरों मध्य जाना,
नाना वाद्यों मधुर-स्वर की मुग्धता को बढ़ाना।
किंवा ले के कियत तरु के शब्दकारी फलों को,
धीरे-धीरे रुचिर-रव से मुग्ध हो-हो बजाना॥
नीचे पुष्पों लसित तरु के जो खड़े भक्त होवें,
किंवा कोई उपल-गठिता-मूर्ति हो देवता की।
तो डालों को परम मृदुता मंजुता से हिलाना,
औ' यों बर्षा कुसुम करना शीश देवालयों के॥
तू पावेगी वर नगर में एक भूखण्ड न्यारा,
शोभा देते अमित जिसमें राज-प्रासाद होंगे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उद्यानों में परम-सुषुमा है जहाँ संचिता-सी,
छीने लेते सरवर जहाँ वज्र की स्वच्छता हैं ॥
तू देखेगी जलद-तन को जा वहीं तद्गता हो,
होंगे लोने नयन उनके ज्योति-उत्कीर्णकारी ।
मुद्रा होगी वर-वदन की मूर्त्ति सी सौम्यता की,
सीधे साधे वचन उनके सिक्तपीयूष होंगे ॥
प्यारे ऐसे अपर जन भी जो वहाँ दृष्टि आवें,
देवों के से प्रथित-गुण से तो उन्हें चीह्न लेना ।
वे हैं थोड़े यदपि वय में तेजशाली बड़े हैं,
तारों में है न छिप सकता कंत राका निशा का ॥
बैठे होंगे जिस थल वहाँ भव्यता भूरि होगी,
सारे प्राणी वदन लखते प्यार के साथ होंगे ।
पाते होंगे परम निधि औ लूटते रत्न होंगे,
होती होंगी हृदयतल की क्यारियाँ पुष्पिता सी ॥
बैठे होंगे निकट जितने शान्त औ शिष्ट होंगे,
मर्य्यादा का सकल जन को ध्यान होगा बड़ा ही ।
कोई होगा न कह सकता बात दुर्वृत्तता की,
पूरा-पूरा हृदय सब के श्याम आतंक होगा ॥
प्यारे प्यारे वचन उनसे बोलते श्याम होंगे,
फैली जाती हृदय उनके हर्ष की बेलि होगी ॥
देते होंगे महत गुण वे देख के नैन कोरों,
लोहे को छू कलित कर से स्वर्ण होंगे बनाते ॥
सीधे जाके प्रथम गृह के मंजु उद्यान में तू,
जो थोड़ी भी तपन तन हो सिक्त हो के मिटाना ।
निर्धूली हो सरस रज से पुष्प के लिप्त होना,
पीछे जाना प्रिय सदन में स्निग्धता से बड़ी ही ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जाते ही छू कमलदल से पाँव को पूत होना,
काली-काली अलक मृदुता से कपोलों हिलाना।
क्रीड़ायें भी कलित करना ले दुकूलादिकों को,
धीरे-धीरे परम तन को प्यार की बेलि बोना॥
तेरे में है यह गुण न जो तू व्यथायें सुनाये,
तू कामों को प्रखर मति औ' युक्तियों से चलाना।
बैठे जो हों सदन अपने मेघ-सी कान्ति वाले,
तो चित्रों को इस भवन के ध्यान से देख जाना॥
जो चित्रों में विरह-विधुरा-ग्राम का चित्र होवे,
तो तू जाके निकट उसको भाव से यों हिलाना।
प्यारे हो के चकित जिससे चित्र की ओर देखें,
आशा है यों सुरति उनको हो सकेगी हमारी॥
जो कोई भी इस सदन में चित्र उद्यान का हो,
औ' प्राणी हो विपुल उसमें घूमते बावले से।
तो तू जाके निकट उसके औ' हिलाके इसे भी,
कंसारी को सुरति व्रज के व्याकुलों की कराना॥
कोई प्यारा कुसुम कुम्हला भौन में जो पड़ा हो,
तो प्यारे के चरण पर ला डाल देना उसे तू।
यों देना ऐ पवन बतला फूल-सी एक बाला,
म्लाना हो-हो कमल पग को चूमना चाहती है॥
जो प्यारे मंजु-उपवन या वाटिका में खड़े हों,
छिद्रों में जा क्वणित करना वेणु लौं कीचकों को।
यों होवेगी सुरति उनको सर्व गोपांगना की,
जो वंशी के श्रवण हित हैं दीर्घ उत्कण्ठ होतीं॥
बैठे नीचे जिस विटप के श्याम हों तू उसी का,
कोई पत्ता निकट उनके नेत्र के ले हिलाना।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यों प्यारे को विदित करना चातुरी से दिखाना,
मेरे चिन्ता-विजित चित का क्लान्त हो काँप जाना॥
कोई पत्ता नवल तरु का पीत जो हो रहा हो,
तो प्यारे के दृग युगल के सामने ला उसे तू।
धीरे धीरे सँभल रखना औ' उन्हें यों बताना,
पीला होना प्रबल दुख से प्रोषिता लौं हमारा॥
यों प्यारे को विदित करके सर्व मेरी व्यथायें,
धीरे-धीरे वहन करके पाँव की धूलि लाना।
थोड़ी-सी भी चरण-रज जो ला न देगी हमें तू,
हा! कैसे तो व्यथित चित को बोध मैं दे सकूँगी॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

१२

जगन्नाथ दास 'रत्नाकर'

काव्य-क्षेत्र से सदा-सर्वदा के लिए विदा लेती हुई ब्रजभाषा ने बुझते हुए दीपक की तरह रत्नाकर के रूप में अपनी ज्योति की अन्तिम प्रखर किरण द्वारा साहित्य-जगत को आलोकित कर दिया। यह वह युग था जब कि खड़ी बोली विजेताओं के दर्प के साथ साहित्य-क्षेत्र पर आधिपत्य जमाती जा रही थी और ब्रज-भाषा को नवयुग के अभिनव भावों की अभिव्यक्ति के लिए असमर्थ घोषित कर दिया गया था। इसी युग में कवि 'रत्नाकर' ने ब्रजभाषा की मधुर वीणा पर वह सुरीली तान छेड़ी जिससे प्रेरणा लेकर अपनी 'रंच ढीली परी बीनहिं सुरीली' बनाने के लिए स्वयं हंसवाहिनी सरस्वती भी आ उपस्थित होने लगीं।

जगन्नाथदास 'रत्नाकर' का जन्म सं० १९२३ में काशी के एक सम्भ्रान्त अग्रवाल परिवार में हुआ था। इनके पिता बा० पुरुषोत्तमदास अग्रवाल हिंदी तथा फ़ारसी कविता के प्रेमी थे और उनके यहाँ काव्य-प्रेमियों की बैठकें हुआ करतीं थीं। भारतेन्दु बाबू भी आया करते थे। वातावरण का प्रभाव पड़ा और बाल्यकाल से ही इनके हृदय में कविता के प्रति आकर्षण और रुचि जाग्रत हो गई। क्वीन्स कालेज से बी० ए० करने के पश्चात् उन्होंने पहले आवागढ़ में और फिर अयोध्या नरेश के यहाँ नौकरी की। अवकाश ग्रहण करने के बाद शेष जीवन साहित्य-सेवा के अर्पण कर दिया। पहले 'ज़की' नाम से उर्दू में कविता शुरू की किन्तु फिर ब्रजभाषा की ओर झुके और अन्त तक उसे ही अपनाए रहे।

'हरिश्चन्द्र' 'उद्धव-शतक' और 'गङ्गावतरण' रत्नाकर के प्रबन्ध-काव्य हैं। श्रृङ्गार, वीर आदि रसों पर इनकी फुटकर रचनाएँ भी हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नागरी-प्रचारिणी सभा ने 'रत्नाकर' नाम से इनकी रचनाओं का संग्रह प्रकाशित कराया है। 'बिहारी-सतसई' पर इनकी टीका 'बिहारी-रत्नाकर' बहुत प्रसिद्ध है और सबसे अधिक प्रामाणिक मानी जाती है।

रत्नाकर जी ने पौराणिक कथाओं को अपने काव्य का विषय बनाया है। 'हरिश्चन्द्र' में सत्यवादी महाराज हरिश्चन्द्र की कथा है, 'गङ्गावतरण' में राजा सगर के पुत्रों की और मर्त्यलोक में गङ्गा के अवतरण की कथा है; तथा 'उद्धव-शतक' में गोपी-उद्धव-संवाद का बड़े चित्ताकर्षक ढङ्ग से वर्णन किया गया है।

रत्नाकर में भक्ति और रीतिकालीन काव्य के तत्त्वों का अद्भुत सम्मिश्रण पाया जाता है। भाव-क्षेत्र में उन्होंने भक्ति-कालीन कवियों से प्रेरणा ली है पर उनमें चमत्कार-प्रियता भक्त-कवियों की अपेक्षा अधिक है। उनकी भाषा रीतिकालीन कवियों की टक्कर की है पर वे उनसे कहीं अधिक भावुक हैं। 'उद्धव-शतक' के कवि में अष्टछाप के कवियों जैसी भावुकता है जबकि दूसरी ओर 'शृङ्गार-लहरी' में प्रेम की परिपूर्णतालक्षित होती है। इस तरह दो विभिन्न कालों श्रेष्ठांश को स्वीकार कर अपनी मौलिक प्रतिभा के योग से उन्होंने जो कुछ भी लिखा है; उसमें जान है; सजग-कल्पना का बल पाकर प्राचीन में भी नवीनता का स्फुरण हो उठा है।

'उद्धव-शतक' रत्नाकर की सर्वोत्कृष्ट रचना है। इसे पढ़िए—एक बार यह भ्रम हो जाएगा कि आप सूर के भ्रमर-गीत के ऊधो और गोपियों के बीच आ खड़े हुए हैं। कृष्ण के प्रति गोपियों का अटूट प्रेम है। वह बड़े डाँट फटकार के से शब्दों में 'अलख-अरूप' की आराधना के लिए अपनी असमर्थता प्रकट करती हैं और इन 'हेकड़' शब्दों में ही कृष्ण के प्रति अपना अचल अनुराग भी व्यक्त कर देती हैं:—

"हम जमराज की धरावति जमा न कछू,
सुरपति सम्पत्ति की चाहति न ढेरी हैं;

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चेरी हैं न ऊधो ! काहू ब्रह्म के बबा की हम,
सूधैं कहैं देत एक कान्ह की कमेरी हैं।"

उद्धव के ब्रज आगमन पर गोपियों की उत्सुकता का रत्नाकर ने बड़ा सुन्दर और सजीव चित्र खींचा है—

"उझकि उझकि पद कंजनि के पंजन पै,
पेखि-पेखि पाती छाती छोहनि छ्वै लगीं;
हमकौं लिख्यौ है कहा, हमकौं लिख्यौ है कहा,
हमकौं लिख्यौ है कहा, कहन सबै लगीं।"

अन्तिम दोनों पंक्तियों में इन अनन्य उपासिकाओं की उत्सुकता का कैसा स्वाभाविक चित्रण है ! सभी यह जानना चाहतीं हैं कि मेरे लिए कृष्ण का क्या संदेश है !! इसके बाद गोपियों ने अपनी व्यथा का जो वर्णन किया है उसमें हृदय के अन्तरतम को छू लेने की क्षमता है। एक सजीव कसक है इन शब्दों में—

"टूँक टूँक ह्वै है मन-मुकुर हमारो हाय,
चूकि हू कठोर-बैन पाहन चलावौ ना;
एक मनमोहन तौ बसिकैं उजारचौ मोहि
हिय में अनेक मनमोहन बसावौना ॥"

अन्तिम दो पंक्तियों में कितना मीठा उपालम्भ है ! वे अपनी अनन्यता को इससे अधिक समर्थ और हृदयस्पर्शी शब्दों में भी व्यक्त कर सकतीं थीं, अनुमान नहीं किया जा सकता।

रत्नाकर बिहारी और पद्माकर से बहुत प्रभावित थे। बिहारी के काव्य का तो उन्होंने बड़ा गहरा अध्ययन किया था। बिहारी अनेक अनुभाव एक ही जगह ला जुटाने में सिद्ध-हस्त हैं; यही बात काफ़ी हद तक रत्नाकर में भी है।

रत्नाकर कोमल भावों को व्यक्त करने में जितने कुशल हैं, उतने ही पुरुष भावों को व्यक्त करने में। वीराष्टक के छन्दों में वीर रस का अच्छा परिपाक हुआ है और वे अत्यन्त प्रभावपूर्ण हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रत्नाकर जी ब्रज-भाषा को ही काव्योपयोगी भाषा मानते थे; खड़ी बोली को नहीं। उनकी भाषा में बिहारी की भाषा की गठन और मिठास है और पद्माकर जैसा प्रवाह। उन्होंने भाषा को सँवार-सुधार कर उसे नई शक्ति दी। संस्कृत-गर्भित और सरल दोनों ही तरह की भाषा पर उनका समान अधिकार है। उक्ति-वैचित्र्य रत्नाकर की सबसे बड़ी विशेषता है। चमत्कार-प्रियता उनमें है अवश्य पर उन्होंने अपनी भाषा को अलंकार-भार से दबने नहीं दिया; न उसमें कृत्रिमता आने दी है।

ब्रज-भाषा के पिछले खेवे के कवियों में रत्नाकर का सर्वोच्च स्थान है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जगन्नाथदास 'रत्नाकर'

कृष्ण-उद्धव-संवाद

न्हात जमुना में जलजात एक देख्यो जात,
जाको अध-ऊरध अधिक मुरझायो है।
कहै 'रत्नाकर' उमहि गहि स्याम ताहि,
बास बासना सों नैंकु नासिका लगायौ है॥
त्यौं ही कछु घूमि झूमि बेसुध भये कै हाय,
पाय परे उखरि अभाय मुख छायौ है॥
पाए घरी द्वैक मैं जगाइ ल्याइ ऊधौ तीर,
राधा नाम कीर जब औचक सुनायौ है॥

देखि दूरि ही तैं दौरि पौरि लगि भेंटि ल्याइ,
आसन दे साँसनि समेटि सकुचानि तैं।
कहै 'रत्नाकर' यौं गुनन गुबिंद लागे,
जौलौं कछू भूले से भ्रमे से अकुलानि तैं॥
कहा कहैं ऊधौ सौं कहै हूँ तौ कहाँ लौं कहैं,
कैसे कहैं कहैं पुनि कौन सी उठानि तैं।
तौलौं अधिकाई तैं उमगि कंठ आइ भिंचि,
नीर ह्वै बहन लागी बात अँखियानि तैं॥

नंद औ जसोमति के प्रेम-पगे पालन की,
लाड़-भरे लालन की लालच लगावती।
कहै 'रत्नाकर' सुधाकर प्रभा सौं मढ़ी,
मंजु मृगनैननि के गुन-गन गावती॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जमुना-कछारन की रंग-रस रारनि की,
बिपिन-बिहारन की हौंस हुमसावती।
सुधि ब्रज-वासिनी दिवैया सुख-रासिनि की,
ऊधौ नित हमकौं बुलावन कौं आवती॥
रूप-रस पावत अघात ना हुते जो तब,
सोई अब आँसू ह्वै उवरि गिरिबौ करैं।
कहै 'रत्नाकर' जुड़ात हुते देखैं जिन्हें,
याद किएँ तिनकौं आँवाँ सौ घिरिबौ करैं॥
दिननि के फेर सौं भयौ है हेर-फेर ऐसौ,
जाकौ हरि फेरि हेरिबोई हिरिबौ करैं।
फिरत हुते जू जिन कुंजनि मैं आठौं जाम,
नैननि मैं अब सोई कुंज फिरिबौ करैं।
मोर के पखौवनि कौ मुकुट छबीलो छोरि,
क्रीट मनि-मंडित धराइ करिहैं कहा।
कहै 'रत्नाकर' त्यौं माखन-सनेही बिनु,
षट-रस व्यंजन चबाइ करिहैं कहा॥
गोपी ग्वाल-बालनि कौं झोंकि बिरहानल में,
हरि-सुर-बृन्द कौं बुलाइ करिहैं कहा।
प्यारौ नाम गोबिंद गुपाल को बिहाय हाय,
ठाकुर त्रिलोक के कहाइ करिहैं कहा॥

गोपी-उद्धव-संवाद (उपालम्भ)

कान्ह-दूत कैधौं ब्रह्म-दूत ह्वै पधारे आप,
धारे प्रन फेरन कौ मति ब्रजबारी की।
कहै रत्नाकर पै प्रीति रीति जानत ना,
ठानत अनीति आनि नीति लै अनारी की।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मान्यो हम, कान्ह ब्रह्म एक ही कहौ जो तुम,
तौहू हमें भावत ना भावना अन्यारी की।
जै है बनि बिगरि न वारिधता वारिधि की,
बूँदता बिलैहै बूँद बिबस बिचारी की॥
हरि तन पानिप के भाजन दृगंचल तैं,
उमगि तपन तैं तपाक करि धावै ना।
कहै रत्नाकर त्रिलोक-ओक-मंडल में,
बेगि ब्रह्मद्रव उपद्रव मचावै ना।
हर कौ समेत हर-गिरि के गुमान गरि,
पल में पतालपुर पैठन पठावै ना।
फैले बरसाने में न रावरी कहानी यह,
बानी कहूँ राधे आधे कान सुनि पावै ना॥
रहति सदाई हरियाई हिय धामनि में
ऊरध उसास सो झकोर पुरवा की है।
पीव पीव गोपी पीर पूरित पुकारति हैं
सोई रत्नाकर पुकारि पपिहा की है।
लागी रहै नैननि सों नीर की झरी औ
उठै चित्त मैं चमक सो चमक चपला की है।
बिनु घनश्याम धाम-धाम ब्रज मण्डल में
ऊधौ नित बसति बहार बरसा की है॥
आये हौ सिखावन कौं जोग मथुरा तैं तौपै,
ऊधौ ये बियोग के बचन बतरावौ ना।
कहै 'रतनाकर' दया करि दरस दीन्यौ,
दुख दरिबै कौं, तौपै अधिक बढ़ावौ ना।
टूक टूक ह्वै है मन-मुकुर हमारौ हाय!
चूकि हू कठोर बैन-पाहन चलावौ ना।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

एक मनमोहन तौ बसिकै उजार्यौ मोहि,
हिय मैं अनेक मनमोहन बसावौ ना ॥१॥
ढोंग जात्यौ ढरकि परकि उर सोग जात्यौ,
जोग जात्यौ सरकि स-कम्प कँखियानि तैं।
कहैं 'रतनाकर' न लेखते प्रपंच ऐंठि,
बैठि धरा लेखते कहूँ धौं नखियानि तैं।
रहते अदेख नाहिं वेष वह देखत हूँ,
देखत हमारी जान मोर पँखियानि तैं।
ऊधो ब्रह्म-ज्ञान को बखान करते ना नैंकु,
देखि लेते कान्ह जौ हमारी अँखियानि तैं॥

उद्धव का प्रत्यागमन

धाईं जित तित तैं बिदाई हेत उद्धव की,
गोपी भरी आरति सम्हारति न साँसुरी।
कहै रतनाकर मयूर पच्छ कोऊ लिये,
कोऊ गुंज अंजली उमाहै प्रेम आँसुरी।
भाव भरी कोऊ लिए रुचिर सजाव दही,
कोऊ मही मंजु दाबि दलकति पाँसुरी।
पीत पट नन्द जसुमति नवनीत नयी,
कीरति-कुमारी सुखवारी दई बाँसुरी॥
कोऊ चले काँपि संग कोऊ उर चाँपि चले,
कोऊ चले कछुक अलापि हल बल से।
कहैं रतनाकर सुदेस तजि कोऊ चले,
कोऊ चले कहत सँदेस अविरल से।
आँसु चले काहू के सुकाहू कैं उसाँस चले,
काहू के हिये पै चन्द्रहास चले हल से।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ऊधव कैं चलत चलाचल चली यौं,
चल अचल चले औ अचले हू भये चल से ॥
प्रेम-मद छाके पद परत कहाँ के कहाँ,
थाके अँग नैनंनि सिथिलता सुहाई है।
कहै रतनाकर यौं आवत चकित ऊधौ,
मानो सुधियात कोऊ भावना भुलाई है।
धारत धरा पै ना उदार अति आदर सौं,
सारत बहौलिन जो आँस अधिकाई है।
एक कर राजै नवनीत जसुदा कौ दियौ,
एक कर बंसी बर राधिका पठाई है ॥

गंगावतरण

वचन बद्ध त्रिपुरारि ताकि सन्नद्ध निहारत।
दियो ढारि विधि गंग-वारि मंगल उच्चारत ॥
चली विपुल-बल वेग बलित बाढ़ति ब्रह्मद्रव।
भरति भुवन भय भार मचावति अखिल उपद्रव ॥
निकसि कमंडल तैं उमंगि नभ मंडल खंडित।
धाई धार अपार वेग सौं वायु बिहंडित ॥
भयौ घोर अति शब्द धमक सौं त्रिभुवन तर्जे।
महामेघमिलि मनहु एक संगहि सब गर्जे ॥
भरके भानु-तुरंग चमकि चलि मग सौं सरके।
हरके बाहन रुकत-नैंक नहिं बिधि हरि हर के ॥
दिग्गज करि चिक्कारि नैन फेरत भय थर के।
धुनि प्रतिधुनि सौं धमकि धराधर के उर धर के ॥
कढ़ि-कढ़ि गृह सौं बिबुध बिबिध जाननि पर चढ़ि-चढ़ि।
पढ़ि-पढ़ि मंगल पाठ लखत कौतुक कछु बढ़ि-बढ़ि ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सुर सुन्दरी ससंक बंक दीरघ दृग कीने।
लगीं मनावन सुकृत हाथ कानन पर दीने॥
निज दरेर सौं पौन-पटल फारति फहरावति।
सुर-पुर के अति सघन घोर घनि घसि घहरावति॥
चली धार धुधकारि धरा दिसि काटति कावा।
सगर-सुतनि के पाप-ताप पर बोलति धावा॥
बिपुल बेगि सौं कबहुँ उमगि आगे कौं धावति।
सौ सौ जोजन लौं सुढार ढरतहिं चलि आवति॥
फटिक सिला के बर बिसाल मन विस्मय बोहत।
मनहु विसद छद अनाधार अंबर मैं सोहत॥
स्वाति-घटा घहराति मुक्ति पानिप सौं पूरी।
कैधौं आवति झुकति सुभ्र आभा रुचि रूरी॥
मीन-मकर-जल-व्यालिनि की चल चिलक सुहाई।
सो जनु चपला चमचमाति चंचल छबि छाई॥
रुचिर रजतमय कै बितान तान्यौ अति बिस्तर।
झिरतिं बुंद सो झिलमिलाति मोतिन की झालर॥
ताके नीचें राग रंग के ढंग जमाए।
सुर बनितनि के बृन्द करत आनन्द-बधाए॥
बर-बिमान-गज-बाजि चढ़े जो लखत देवगन।
तिनके तमकत तेज दिव्य दमकत आभूषन॥
प्रतिबिंबित जब होत परम प्रसरित प्रवाह पर।
जान परत चहुँ ओर उए नव बिमल विभाकर॥

श्मशान-वर्णन

कीन्हें कम्बल-बसन तथा लीन्हें लाठी कर।
सत्यव्रती हरिचन्द हुते टहरत मरघट पर॥
कहत पुकारि पुकारि बिना कर कफ़न चुकाये।
करहिं क्रिया जनि कोइ देत हम सबहिं जताये॥१॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कहुँ सुलगति कोउ चिता कहूँ कोउ जाति बुझाई।
एक लगाई जाति एक की राख बहाई॥
बिबिध रंग की उठत ज्वाल दुर्गन्धनि महकति।
कहुँ चरबी सौं चटचटाति कहुँ दहदह दहकति॥२॥
कहुँ फूँकन हित धर्‌यौ मृतक तुरतहिं तहँ आयौ।
पर्‌यो अंग अधजर्‌यौ कहूँ कोऊ करवायौ॥
कहूँ स्वान इक अस्थिखंड लै चाटि चिचोरत।
कहुँ कारो महि काक ठोर सौं ठोकि टटोरत॥३॥
कहुँ शृगाल कोउ मृतक अंग पर ताक लगावत॥
कहुँ कोउ शव पर बैठि गिद्ध चट चोंच चलावत॥
जहँ तहँ मज्जा माँस रुधिर लखि परत बगारे।
जित तित छिटके हाड़ स्वेत कहुँ कहुँ रतनारे॥४॥
हरहरात इक दिसि पीपर को पेड़ पुरातन।
लटकत जामैं घंट घने माटी के बासन॥
बरषा ऋतु के काज औरहू लगत भयानक।
सरिता बहति सबेग करारे गिरत अचानक॥५॥
ररत कहूँ मण्डूक कहूँ झिल्ली झनकारैं।
काक मण्डली कहूँ असंगल मन्त्र उचारैं॥
लखन भूप यह साज मनहिं मन करत गुनावन॥
"पर्‌यौ हाय! आजन्म कर्म यह करन अपावन॥"६॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

१३

मैथिलीशरण गुप्त

द्विवेदी-काल की इतिवृत्तात्मकता से लेकर आधुनिक काल की नई-से-नई लाक्षणिक अभिव्यन्जना प्रणाली के अगर किसी के काव्य में दर्शन होते हैं तो मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में। हिन्दी-काव्य की पिछले पैंतीस वर्षों की प्रगति का इतिहास इस प्रतिनिधि-कवि के काव्य में सुरक्षित है। इस समय में काव्य के भाव, भाषा और शैली में महत्त्वपूर्ण विकास हुआ है और गुप्तजी सदा इसके साथ क़दम-से-क़दम मिलाकर आगे बढ़े हैं; वे युग से पीछे पिछड़ना नहीं जानते। सामान्य जनता और विद्वानों दोनों में अगर इस युग के किसी कवि ने समान आदर प्राप्त किया है तो गुप्तजी ने। यही उनकी लोकप्रियता का कारण है।

गुप्तजी का जन्म सन् १८८६ (सं० १९४३) में चिरगाँव (ज़िला झाँसी) में हुआ था। पिता श्री० सेठ रामचरण बड़े भगवद्भक्त और काव्य-प्रेमी थे और ये दोनों ही बातें गुप्तजी को विरासत में मिलीं। स्कूली शिक्षा से विशेष दिलचस्पी न होने के कारण घर पर ही अध्ययन करते रहे। काव्य-रचना की ओर प्रवृत्ति थी ही; द्विवेदी जी के प्रोत्साहन से इस क्षेत्र में धीरे-धीरे आगे बढ़ते गए और आज इनकी गणना युग के सर्वश्रेष्ठ कवियों में होती है।

गुप्तजी के मौलिक और अनूदित ग्रन्थों की संख्या लगभग २५ होगी। इनमें गुप्तजी की कवित्व-शक्ति का क्रमशः विकास होता गया है। प्रारम्भिक रचनाएँ काव्य-कला की दृष्टि से विशेष महत्त्व की नहीं लेकिन सोये हुए देश में राजनीतिक चेतना जाग्रत करने में उन्होंने बड़ा योग दिया है। उनमें राष्ट्र-प्रेम और भारतीयता की भावना कूट-कूट कर भरी हुई है और यही गुप्तजी के काव्य की सबसे बड़ी विशेषता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है। 'भारत-भारती' ने आलस्य-ग्रस्त जाति के रक्त में गर्मी पैदा की और मृतात्माओं में जीवन का संचार किया। गुप्तजी अपने देश की संस्कृति के अमर गायक हैं।

'पंचवटी' में हमें सर्वप्रथम गुप्तजी की कवित्व-शक्ति का सच्चा परिचय मिलता है। 'साकेत' तक पहुँचते-पहुँचते उनकी काव्य-कला अपने पूर्ण विकसित रूप में आ जाती है। 'साकेत' उनका सर्वश्रेष्ठ काव्य है। चरित्र-चित्रण, प्रबन्ध-सौष्ठव, प्रकृति-चित्रण आदि सभी की दृष्टि से 'साकेत' की गणना इस युग के सर्वोत्कृष्ट काव्यों में होती है। 'साकेत' में राम मानव रूप में हमारे सामने उपस्थित होते हैं। हम उनसे पूर्ण सामीप्य अनुभव करते हैं। वे इसी पार्थिव-जगत् के व्यक्ति हैं, अतिमानव नहीं। और अयोध्या के इस राज परिवार के बीच में प्रतिष्ठित है युग-युग की उपेक्षिता उर्मिला। इस करुण-मूर्ति की ओर और इसके बाद 'यशोधरा' और 'राधा' काव्य-साहित्य की दो और उपेक्षिता नारियों की ओर गुप्तजी ने हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। उर्मिला और यशोधरा—गुप्तजी के ये दोनों पात्र हमारे मन और मस्तिष्क पर अमिट प्रभाव छोड़ जाते हैं। उर्मिला एक कर्त्तव्यनिष्ठ पत्नी है; वह अपने विरहोद्गार अपने ही अन्तर में छिपाए रखती है किसी पर प्रकट नहीं करती लेकिन एक क्षण के लिए भी प्रिय मिलन की आशा हृदय से नहीं जाने देती। इस अखण्ड विश्वास को लिए ही वह जी रही है। उधर यशोधरा के चरित्र को तो गुप्तजी ने और भी अधिक निखार दिया है। उसे इस बात का दुःख है कि गौतम उससे कह कर वन को नहीं गए। उन्होंने आर्य नारी के आत्म त्याग और तप की परम्परा को चुनौती दी! इस चुनौती को स्वीकार करते हुए गर्विणी यशोधरा के मुख से जो भी शब्द निकले हैं, वे साहित्य की स्थायी निधि हैं। भारतीय नारी के जीवन की सम्पूर्ण व्याख्या गुप्तजी की इन दो पंक्तियों में सिमट गई है—'अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी; आँचल में है दूध और आँखों में पानी।'—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गुप्तजी की ये पंक्तियाँ हमेशा हमेशा के लिए अमर हैं। युग-युग से दासता की बेड़ियों में जकड़ी हुई नारी के प्रति गुप्तजी की हार्दिक सहानुभूति इन पंक्तियों में साकार हो उठी है। 'साकेत' में गुप्तजी ने कैकेयी का भी बड़ा मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। 'यशोधरा' के कुछ गीत बड़े मार्मिक हैं। गुप्तजी के गीतों में छायावादी कवियों से भिन्न एक गीत-कला का विकास हुआ है। उनके गीतों में हमें आँखें बन्द करा आकाश की ऊँचाइयों में उड़ा ले जाने की क्षमता चाहे भले ही न हो; पर लोक-गीतों के से सहज सौन्दर्य और माधुर्य के कारण उनमें हमारे अन्तर को छू लेने की क्षमता अवश्य है। उनके गीतों में और उनके समूचे काव्य में—उनके सरल सौम्य व्यक्तित्व का प्रतिबिम्ब मिलता है। 'पंचवटी' में कवि ने बड़े सुन्दर चित्र उपस्थित करके अपने प्रकृति-प्रेम का परिचय दिया है।

भाषा पर गुप्तजी का असाधारण अधिकार है। प्रसाद गुण उनके काव्य की सबसे बड़ी विशेषता है। जितने सुन्दर और स्वाभाविक सम्वाद गुप्तजी के काव्य में हैं, आधुनिक युग के किसी और कवि के काव्य में नहीं। उनकी भाषा प्राञ्जल और सुसंस्कृत है। वह कोमल तथा परुष दोनों तरह के भाव व्यक्त करने में सिद्धहस्त हैं। 'जयद्रथ वध' की भाषा में ओज है और इसमें वीर रस का सुन्दर परिपाक हुआ है। अलंकारों का प्रयोग उन्होंने बड़े स्वाभाविक ढंग से किया है।

गुप्तजी का काव्य-क्षेत्र अव्यक्त जगत् नहीं है, व्यक्त और दृश्य जगत् है, वर्तमान भारत का और सामयिक राजनीतिक और सामाजिक आन्दोलनों का जैसा जीता-जागता चित्र हमें गुप्तजी के काव्य में मिलता है अन्यत्र असम्भव है। गुप्तजी का काव्य हमें कर्मठता, राष्ट्र प्रेम और मानवता का अमर सन्देश देता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मैथिलीशरण गुप्त

निरख सखी ये खंजन आये।
फेरे उन मेरे रञ्जन ने नयन इधर मनभाये।
फैला उनके तन का आतप मन से सर सरसाये,
घूमें वे इस ओर वहाँ, ये हंस यहाँ उड़ छाये।
करके ध्यान आज इस जन का निश्चय वे मुसकाये.
फूल उठे हैं कमल, अधर से ये बन्धूक सुहाये।
स्वागत, स्वागत, शरद भाग्य से मैं ने दर्शन पाये,
नभ ने मोती वारे, लो ये अश्रु अर्घ्य भर लाये।
मुझे फूल मत मारो।
मैं अबला बाला वियोगिनी, कुछ तो दया विचारो।
होकर मधु के मीत मदन, पटु तम कटु गरल न गारो,
मुझे विकलता, तुम्हें बिफलता ठहरो श्रम परिहारो।
नहीं भोगिनी यह मैं कोई, जो तुम जाल पसारो,
बल हो तो सिन्दूर बिन्दु यह यह हरनेत्र निहारो॥
रूप दर्प कन्दर्प तुम्हें तो मेरे पति पर वारो,
लो यह मेरी चरण धूलि उस रति के सिर धारो॥
मेरे चपल यौवन बाल।
अचल अंचल में पड़ा सो मचल कर मत साल॥
बीतने दे रात, होगा सुप्रभात विशाल,
खेलना फिर खेल मनके हिरन के मणि माल।
पक रहे हैं भाग्य फल तेरे सुरम्य रसाल,
डर न, अवसर आ रहा है, जा रहा है काल।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मन पुजारी और तन इस दुःखिनी का थाल,
भेंट प्रिय के हेतु उसमें एक तू ही लाल।

पुनर्मिलन

(उर्मिला-लक्ष्मण)

पाकर अहा! उमंग उर्मिला अंग भरे थे,
आली से हँस कहा—"कहाँ ये रंग भरे थे?
सुप्रभात है आज, स्वप्न की सच्ची माया।
किन्तु कहाँ वे गीत, यहाँ जब श्रोता आया!
फड़क रहा है वाम नेत्र, उच्छ्वसित हृदय है,
अब भी क्या तन्वंगि, तुम्हें संशय या भय है?
आओ, आओ, तनिक तुम्हें सिंगार सजाऊँ,
बरसों की मैं कसक मिटाऊँ, बलि बलि जाऊँ।"
"हाय सखी शृंगार? मुझे अब भी सोहेंगे?
क्या वस्त्रालंकार मात्र से वे मोहेंगे?
मैंने जो वह 'दग्ध-वर्त्तिका' चित्र लिखा है,
उसमें तू क्या आज उठाने चली शिखा है?
नहीं, नहीं, प्राणेश मुझी से छले न जावें,
जैसी हूँ मैं, नाथ मुझे वैसा ही पावें।
शूर्पणखा मैं नहीं—हाय, तू तो रोती है!
अरी, हृदय की प्रीति हृदय पर ही होती है।"
"किन्तु देख यह वेश दुखी होंगे वे कितने?"
"तो, ला भूषण-वसन, इष्ट हों तुझको जितने।
पर यौवन-उन्माद कहाँ से लाऊँगी मैं?
वह खोया धन आज कहाँ सखि पाऊँगी मैं!"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"अपराधी-सा आज वही तो आने को है,
बरसों का यह दैन्य सदा को जाने को है।
कल रोती थीं आज मान करने बैठी हो,
कौन राग यह, जिसे गान करने बैठी हो ?
रवि को पाकर पुनः पद्मिनी खिल जाती है,
पर वह हिमकण विना कहाँ शोभा पाती है ?"
"तो क्या आँसू नहीं सखी, अब इन आँखों में ?
फूटें, पानी न हो बड़ी भी जिन आँखों में !"
"प्रीत-स्वति का पिया शुक्ति बन बन कर पानी,
राजहंसिनी, चुनो रीति-मुक्ता अब रानी।"
"विरह रुदन में गया, मिलन में भी मैं रोऊँ,
मुझे और कुछ नहीं चाहिए, पद-रज धोऊँ।
जब थी तब थी आलि, उर्मिला उनकी रानी,
वह बरसों की बात आज होगई पुरानी !
अब तो केवल रहूँ सदा स्वामी की दासी,
मैं शासन की नहीं, आज सेवा की प्यासी।
युवती हो या आलि, उर्मिला बाला तन से,
नहीं जानती किन्तु स्वयं, क्या है वह मन से !
देखूँ, कह, प्रत्यक्ष आज अपने सपने को,
या सजबज कर आप दिखाऊँ मैं अपने को ?
सखि, यथेष्ट है यही धुली धोती ही मुझको,
लज्जा उनके हाथ, व्यर्थ चिन्ता है तुझको।
उछल रहा यह हृदय अंक में भर ले आली,
निरख तनिक तू आज ढीठ सन्ध्या की लाली।
मान करूँगी आज ? मान के दिन तो बीते,
फिर भी पूरे हुए सभी मेरे मनचीते।
टपक रही वह कुञ्ज-शिला वाली शेफाली,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जा नीचे, दो चार फूल चुन, ले आ डाली।
वनवासी के लिए सुमन की भेट भली वह।"
"किन्तु उसे तो कभी पा चुका प्रिये, अली यह।
देखा प्रिय को चौंक प्रिया ने, सखी किधर थी?
पैरों पड़ती हुई उर्मिला हाथों पर थी!
लेकर मानों विश्व-विरह उस अन्तःपुर में,
समा रहे थे एक दूसरे के वे उर में।
रोक रही थी उधर मुखुर मैना को चेरी—
'यह हत हरिणी छोड़ गये क्यों नये अहेरी!'
"नाथ, नाथ, क्या तुम्हें सत्य ही मैंने पाया?
"प्रिये, प्रिये, हाँ आज-आज-ही-वह दिन आया।
मेघनाद की शक्ति सहन करके कह छाती,
अब भी क्या इन पाद-पल्लवों से न जुड़ाती?
मिला उसी दिन किन्तु तुम्हें मैं खोया खोया,
जिस दिन आर्या बिना आर्य का मन था रोया।
पूर्ण रूप से सुनो, तुम्हें मैंने कब पाया,
जब आर्या का हनूमान ने विरह सुनाया!
अब तक मानों जिसे वेषभूषा में टाला।
अपने को ही आज मुझे तुमने दे डाला।
आँखों में ही रही अभी तक तुम थीं मानों,
अन्तस्तल में आज अचल निज आसन जानों।
परिधि-विहीन सुधांशु-सदृश सन्ताप-विमोचन,
धूल रहित, हिम-धौत सुमन-सा लोजन-रोचन,
अपनी द्युति ने आप उदित, आडम्बर त्यागे,
धन्य अनावृत-प्रकृत-रूप यह मेरे आगे।
जो लक्ष्मण था एक 'तुम्हारा लोलुप कामी,
कह सकती हो आज उसे तुम अपना स्वामी।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"स्वामी, स्वामी, जन्म जन्म के स्वामी मेरे !
किंतु कहाँ वे अहोरात्र, वे साँझ-सवेरे !
खोई अपनी हाय ! कहाँ वह खिल खिल खेला ?
प्रिय, जीवन की कहाँ आज वह चढ़ती बेला ?"
काँप रही थी देह-लता उसकी रह रह कर,
टपक रहे थे अश्रु कपोलों पर वह बह कर।
"वह वर्षा की बाढ़, गई, उसको जाने दो,
शुचि-गँभीरता प्रिये, शरद की यह आने दो।
धरा-धाम को राम-राज्य की जय गाने दो,
लाता है जो समय प्रेम-पूर्वक, लाने दो।
तुम सुनो, सदैव समीप है—
जो अपना आराध्य है।
आओ, हम साधें शक्ति भर,
जो जीवन का साध्य है।

महाभिनिष्क्रमण

आज्ञा लूँ या दूँ मैं अकाम ?
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम !
रख अब अपना यह स्वप्न जाल,
निष्फल मेरे ऊपर न डाल।
मैं जागरूक हूँ, ले सँभाल,
निज राज पाट, धन धरणि, धाम।
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम।
रहने दे वैभव यशः शोभ,
जब हमीं नहीं' क्या कीर्तिलोभ ?
तू क्षम्य, करूँ क्यों हाय क्षोभ,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

थम, थम, अपने को आप थाम ।
ओ क्षणभंगुर भव राम राम ।
क्या भाग रहा हूँ भार देख ?
तू मेरी ओर निहार देख ।
मैं त्याग चला निस्सार देख,
अटकेगा मेरा कौन काम ?
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम ।
रूपाश्रय तेरा तरुण गात्र,
कह, वह कब तक है प्राण पात्र ?
भीतर भीषण कंकाल मात्र,
बाहर बाहर है टीम टाम !
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम ।
प्रच्छन्न रोग हैं प्रकट भोग,
संयोग मात्र भावी वियोग !
हा ! लोभ मोह में लीन लोग,
भूले हैं अपना अपरिणाम ।
ओ क्षणभंगुर भव राम राम ।
यह आर्द्र शुष्क, यह उष्ण शीत,
वह वर्तमान, यह तू व्यतीत ।
तेरा भविष्य क्या मृत्यु भीत ?
पाया क्या तूने धूम धाम ?
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम ।
सब देकर भी क्या आज दीन,
अपने या तेरे निकट हीन ?
मैं हूँ अब अपने ही अधीन,
पर मेरा श्रम है अविश्राम ।
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इस मध्य निशा में ओ अभाग,
तुझको तेरे ही अर्थ त्याग,
जाता हूँ मैं यह वीतराग।
दयनीय, ठहर तू क्षीण क्षाम।
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम।

तू दे सकता था विपुल वित्त,
पर भूलें उसमें भ्रान्त चित्त।
जाने दे चिर जीवन निमित्त,
दूँ क्या मैं तुझको हाड़ चाम ?
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम।

मैं त्रिविध दुःख विनिवृत्त हेतु,
बाँधू अपना पुरुषार्थ सेतु,
सर्वत्र उड़े कल्याण केतु,
तब है मेरा सिद्धार्थ नाम।
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम।

वह कर्म काण्ड तांडव विकास,
वेदी पर हिंसा हास रास,
लोलुप रसना का लोल लास,
तुम देखो ऋग यजु और साम।
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम।

आ, मित्र चक्षु के दृष्टि लाभ,
ला, हृदय विजय रस वृष्टि लाभ।
पा, है स्वराज्य, बढ़ सृष्टि लाभ,
जा दंड भेद, जा साम दाम।
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तव जन्म भूमि, तेरा महत्व,
जब मैं ले आऊँ अमर तत्व।
यदि पा न सके तू सत्य सत्य,
तू सत्य कहाँ? भ्रम और भ्राम।
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम।

हे पूज्य पिता, दाता, महान्,
क्या माँगू तुम से क्षमा दान?
क्रन्दन क्यों? गाओ भद्र गान,
उत्सव हो पुर पुर ग्राम ग्राम।
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम।

हे मेरे प्रतिभू, तात नन्द,
पाऊँ यदि मैं आनन्द कन्द,
तो क्यों न उसे लाऊँ अमन्द?
तू तो है मेरे ठौर ठाम।
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम।

अयि गोपे, तेरी गोद पूर्ण,
तू हास विलास विनोद पूर्ण।
अब गौतम भी हो मोद पूर्ण,
क्या अपना विधि है आज वाम?
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम।

क्या तुझे जगाऊँ एक बार?
पर है अब भी अप्राप्त सार,
सो, अभी स्वप्न ही तू निहार,
हे शुभे, श्वेत के साथ श्याम।
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

राहुल, मेरे क्षण मोक्ष, माप।
लाऊँ मैं जब तक अमृत आप,
माँ ही तेरी माँ और बाप,
दुल, मातृ हृदय के मृदुल दाम।
ओ क्षणभंगुर भव राम राम।

यह घन तम, सन सन पवन जाल,
भन भन करता यह काल व्याल,
मूर्च्छित विषाक्त वसुधा विशाल।
भय, कह, किस पर यह भूरि भाम?
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम!

छन्दक, उठ, ला निज वाजिराज,
तज भय विस्मय, सज शीघ्र साज।
सुन, मृत्यु विजय अभियान आज!
मेरा प्रभात यह रात्रि याम।
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम।

वह जन्म मरण का भ्रमण माण
मैं देख चुका हूँ अपरिणाम।
निर्वाण हेतु मेरा प्रयाण;
क्या वात वृष्टि, क्या शीत घाम।
ओ क्षणभंगुर भव; राम राम!

हे राम, तुम्हारा वंश जात
सिद्धार्थ तुम्हारी भाँति, तात,
घर छोड़ चला यह आज रात;
आशीष उसे दो, लो प्रणाम।
ओ क्षणभंगुर भव, राम राम!

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

राहुल जननी

चेरी भी यह आज कहाँ कल थी जो रानी,
दानी प्रभु ने दिया उसे क्यों मन यह मानी ?
अबला जीवन, हाय ! तुम्हारी यही कहानी
आँचल में है दूध और आँखों में पानी !

मेरा शिशु-संसार वह
दूध पिये, परिपुष्ट हो,
पानी के ही पात्र तुम,
प्रभो, रुष्ट या तुष्ट हो !
सो, अपने चंचलपन, सो !
सो, मेरे अंचल धन, सो !

पुष्कर सोता है निज सर में,
भ्रमर सो रहा है पुष्कर में,
गुंजन सोया कभी भ्रमर में,
सो, मेरे गृह गुंजन, सो !
सो, मेरे अंचल धन, सो !

तनिक पार्श्व परिवर्तन कर ले,
उस नासा पुट को भी भर ले,
उभय पक्ष का मन तू हर ले,
मेरे व्यथा विनोद न, सो !
सो, मेरे अंचल धन, सो।

रहे मन्द ही दीपक माला,
तुझे कौन भय कष्ट कसाला ?
जाग रही है मेरी ज्वाला,
सो, मेरे आश्वासन, सो !
सो, मेरे अंचल धन, सो !

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ऊपर तारे झलक रहे हैं,
गोखों से लग ललक रहे हैं,
नीचे मोती ढलक रहे हैं,
सो मेरे अपलक दर्शन, सो !
सो, मेरे अंचल धन, सो !

तेरी साँसों का निस्पन्दन,
मेरे तप्त हृदय का चन्दन !
सो, मैं कर लूँ जी भर क्रन्दन !
सो, उनके कुल नन्दन, सो !
सो, मेरे अंचल धन, सो !

खेले मन्द पवन अलकों से,
पोंछूँ मैं उनको पलकों से !
छदरद की छवि छलकों से
पुलक पूर्ण शिशु यौवन सो !
सो, मेरे अंचल धन, सो !

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जयशंकर 'प्रसाद'

द्विवेदीकालीन इतिवृत्तात्मकता के मरुस्थल में चक्कर काटने के कारण क्लांत हिंदी कविता को कल्पना प्रधान छायावाद के हरे भरे उपवन में ला उपस्थित करने वाले इस महाकवि ने अपनी कला-पटु उँगलियों से वाणी के पावन मंदिर में जितने विविध रंगों के सुरभित पुष्प चढ़ाए उतने आधुनिक युग के किसी कवि ने नहीं। प्रसाद कवि होने के साथ ही साथ एक सफल नाटककार, सर्वप्रथम मौलिक कहानीकार, उपन्यासकार और एक उच्चकोटि के निबन्धकार भी थे। उन्होंने अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा से साहित्य के सभी अंगों को समृद्ध किया है।

श्री जयशंकर 'प्रसाद' का जन्म काशी के एक प्रतिष्ठित परिवार में माघ शुक्ला दशमी सं० १९४६ को हुआ था। इनके पिता बाबू देवी प्रसाद 'सुँघनी साहु' के नाम से प्रसिद्ध थे और काशी के एक सुप्रसिद्ध व्यापारी थे। पिता की असमय मृत्यु के कारण उनकी शिक्षा घर पर ही हुई। सत्रह वर्ष की अवस्था में बड़े भाई के स्वर्गवास के बाद 'प्रसाद' का जीवन ही बदल गया। जीवन के प्रभात में प्रसाद जी ने सुनहरा और मनोरम स्वप्न देखा था, उसकी स्मृति वे जीवन भर सूम के धन की तरह सँजोये रहे। प्रसाद का इसके बाद का जीवन एक निरंतर संघर्ष-रत मानव का कटु अनुभवों का जीवन था। संवत् १९९४ में क्षयरोग से उनका शरीरान्त हो गया।

उनकी आरम्भिक रचनाएं—चित्राधार, कानन-कुसुम, महाराणा का महत्त्व, करुणालय, प्रेम-पथिक आदि हैं; मध्यकालीन रचनाएँ—झरना, आँसू और लहर और कामायनी उनकी अंतिम और सर्वोत्कृष्ट रचना

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है। इनके अतिरिक्त प्रसाद जी के कई नाटक, उपन्यास, कहानी-संग्रह और एक निबन्ध-संग्रह है।

प्रसाद जी मुख्यरूप से प्रेम और सौन्दर्य के कवि हैं। उनका प्रेम रीतिकालीन कवियों जैसा स्थूल और वासनामय प्रेम नहीं, बल्कि आत्मत्याग की भावना से अनुप्राणित पवित्र प्रेम है—'प्रेम पवित्र पदार्थ न इसमें कहीं कपट की छाया हो।' प्रेम के इस यज्ञ में स्वार्थ और कामना का हवन कर देना होता है; उसका सिद्धान्त ही अपना अस्तित्त्व मिटा देना है—'इसका है सिद्धान्त मिटा देना अस्तित्त्व सभी अपना।' जब यह लौकिक प्रेम 'असीम' के प्रति उन्मुख होता है, तो काव्य में रहस्यवाद के दर्शन होते हैं। 'आँसू' में कवि की अपनी आत्माभिव्यक्ति है जिसमें हमें उसके स्वरूप के सच्चे दर्शन होते हैं। अपनी सरसता, मार्दव और भाव-सौकुमार्य के कारण 'आँसू' इस युग का सर्वश्रेष्ठ गीति-काव्य है और काव्य-प्रेमियों के गले का हार है। इसके एक-एक शब्द में कवि के हृदय की वेदना मुखरित हो उठी है। इसका विषय मुख्य रूप से विप्रलम्भ शृंगार है पर बीच-बीच में उस 'असीम' से प्रति भी संकेत है।

'कामायनी' प्रसाद जी की अंतिम और सर्वश्रेष्ठ काव्य-कृति है। इसका प्रकाशन हिंदी-साहित्य की एक घटना है। इसकी कथा वैदिक साहित्य के विभिन्न स्थलों से ली गई है। मनु, श्रद्धा और इड़ा इसके प्रमुख पात्र हैं। इसमें जल-प्लावन के बाद सृष्टि के पुनर्विकास की कथा वर्णित है। रूपक द्वारा कवि ने जीवन की एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण समस्या का हल प्रस्तुत किया है। मनु चेतन मन के प्रतीक हैं; श्रद्धा रागात्मिका वृत्ति और इड़ा तर्क-कुतर्क पूर्ण बुद्धि। मनु जब तक इड़ा के आधीन रहते हैं उन्हें शांति नहीं मिलती—वे केवल भौतिक विकास को अपने जीवन का चरम उद्देश्य मान बैठते हैं और निरतर इधर-उधर भटकते हैं। अंत में श्रद्धा ही मार्ग प्रदर्शन करके उन्हें उस स्थान पर ले जाती है जहाँ इच्छा, कर्म और ज्ञान के सामञ्जस्य से उन्हें

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पूर्ण आनंद की उपलब्धि होती है। यह वह स्थान है जहाँ—'शापित न यहाँ है कोई, तापित पापी न यहाँ है; जीवन वसुधा समतल है, समरस है जो कि जहाँ है।' यह समरसता प्राप्ति ही मानव-जीवन का परम लक्ष्य है। इस छोटी-सी कहानी में मानव-संस्कृति की स्थापना का समूचा इतिहास समा गया है। प्रसाद जी की नारी पुरुष का उद्धार करने वाली है, उसे गिरानेवाली नहीं। यह सच है कि बुद्धि सामाजिक-विकास के लिए अनिवार्य है पर श्रद्धा के बिना बुद्धि पर नियंत्रण नहीं रखा जा सकता 'कामायनी' में प्रसाद ने यथार्थवाद और आदर्शवाद का अद्भुत समन्वय उपस्थित किया है। कथानक, शैली, चरित्र-चित्रण किसी की दृष्टि से देखिए 'कामायनी' युग की सर्वश्रेष्ठ रचना ठहरेगी। प्रसाद जी ने उन कोनों की झाँकी उपस्थित की है जहाँ उनसे पहिले साहित्य का कोई महारथी नहीं पहुँच पाया।

प्रसाद जी ने रूप और सौन्दर्य के जो चित्र उपस्थित किए हैं, उनकी रविठाकुर के एक-दो चित्रों को छोड़ आधुनिक भारतीय-साहित्य में कोई मिसाल नहीं। उनका चित्र मानों अभी चल फिर, बोल-चाल उठेगा; हर चित्र में जान है। एक चित्र देखिए—'शशि मुखपर घूँघट डाले, आँचल में दीप छिपाए, गोधूली की वेला में कौतूहल से तुम आए।'—जीवन के एक क्षण का चित्र होने पर भी यह चित्र चिरंतन हो उठा है। प्रसाद जी के मनु, श्रद्धा और इड़ा यदि आज हमारे सामने आएँ, तो हम उन्हें तुरन्त पहचान सकते हैं। अपने प्रकृति-प्रेम के कारण प्रसाद जी अपने काव्य में नए-नए उपमान ढूँढकर लाए हैं और हर चित्र को असीम सौन्दर्य प्रदान किया है। उन्होंने प्राय:मूर्त के लिए अमूर्त और अमूर्त के लिए मूर्त उपमानों का सहारा लिया है। उनके किसी चित्र में वासना की नग्नता और अश्लीलता का आभास नहीं मिलेगा।

प्रसाद जी की भाषा में माधुर्य का प्राधान्य होने पर भी भाव-गाम्भीर्य के कारण प्रस द गुण का सर्वथा अभाव है। उनके काव्य को

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वही भली-भाँति समझ सकता है जिसकी कल्पना-शक्ति सजग हो; जिसने जीवन को प्यार किया हो और यौवन के प्रति ममत्वपूर्ण दृष्टिकोण रखता हो।

युगों तक वनों में चक्कर काटने और थोथी भावुकता की आँधियों के थपेड़े खाने के बाद हिंदी-काव्य ने 'कामायनी' में अपनी आत्मा—अपने सच्चे स्वरूप—को प्राप्त किया है। 'कामायनी' के संदेश को राष्ट्रीयता और जातीयता के बंधनों में नहीं बाँधा जा सकता—वह सम्पूर्ण मानवता का काव्य है और उसका संदेश सार्वभौमिक और सार्वकालिक है।

काव्य-गंगा को नीरसता के जटाजूट से निकाल मानव-हृदय की सरस घाटियों में बहाने वाले प्रसाद जी आधुनिक युग के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं और 'कामायनी' इस युग की सर्वश्रेष्ठ काव्य-कृति।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जयशंकर प्रसाद

मधुमय देश

अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।
सरस तामरस गर्भ विभा पर-नाच रही तरुशिखा मनोहर।
छिटका जीवन हरियाली पर-मङ्गल कुंकुम सारा।
लघु सुरधनु से पंख पसारे-शीतल मलय समीर सहारे।
उड़ते खग जिस ओर मुँह किये—समझ नीड़ निज प्यारा।
बरसाती आँखों के बादल—बनते जहाँ भरे करुणा जल।
लहरें टकरातीं अनन्त की—पाकर जहाँ किनारा।
हेम कुम्भ ले उषा सवेरे—भरती ढुलकाती सुख मेरे।
मदिर ऊँघते रहते जब—जग कर रजनी भर तारा।

आँसू

जो घनीभूत पीड़ा थी, मस्तक में स्मृति-सी छाई,
दुर्दिन में आँसू बनकर, वह आज बरसने आई ॥१॥
मधुराका मुसक्याती थी, पहले देखा जब तुमको।
परिचित से जाने कबके, तुम लगे उसी क्षण हमको ॥२॥
शशि-मुख पर घूँघट डाले अन्तर में दीप छिपाये,
जीवन की गोधूली में कौतूहल से तुम आये ॥३॥
घन में सुन्दर बिजली-सी, बिजली में चपला चमक-सी,
आँखों में काली पुतली, पुतली में श्याम झलक-सी ॥४॥
माना कि रूप,सीमा है, सुन्दर, तव चिर-यौवन में,
पर समा गये थे मेरे मन के निस्सीम गगन में ॥५॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

मादकता से आये तुम संज्ञा से चले गये थे,
हम व्याकुल पड़े बिलखते थे उतरे हुए नशे से ॥६॥
मत कहो कि यही सफलता कलियों के लघु जीवन की,
मकरन्द भरी खिल जायें तोड़ी जायें बेमन की ॥७॥
यदि दो घड़ियों का जीवन कोमल वृन्तों में बीते,
कुछ हानि तुम्हारी है क्या चुपचाप चू पड़े जीते ॥८॥
मानव-जीवन-वेदी पर परिणय हो विरह-मिलन का,
दुख-सुख दोनों नाचेंगे, है खेल आँख का मन का ॥९॥

(आँसू से)

गीत

बीती बिभावरी जाग री!
अम्बर-पनघट पर डुबो रही तारा-घट ऊषा नागरी।
खग कुल कुल-कुल-सा बोल रहा,
किसलय का अञ्चल डोल रहा।
लो यह लतिका भी भर लाई—
मधु मुकुल नवल रस गागरी॥
अधरों में राग अमन्द पिये,
अलकों में मलयज बन्द किये।
तू अब तक सोई है आली!
आँखों में भरे विहाग री!

(लहर से)

अभियान गीत

हिमाद्रि तुङ्ग शृङ्ग से
प्रबुद्ध शुद्ध भारती—
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला
स्वतन्त्रता पुकारती—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़-प्रतिज्ञ सोच लो,
प्रशस्त पुण्य पन्थ है—बढ़े चलो, बढ़े चलो !"
असंख्य कीर्तिरश्मियाँ,
विकीर्ण दिव्यदाह-सी,
सपूत मातृ-भूमि के—
रुको न शूर साहसी !
अराति सैन्य सिन्धु में—सुवाडवाग्नि से जलो,
प्रवीर हो जयी बनो—बढ़े चलो बढ़े चलो।
(चन्द्रगुप्त से)

लज्जा

कोमल किसलय के अंचल में
नन्ही कलिका ज्यों छिपती सी;
गोधूली के धूमिल पट में
दीपक के स्वर में दिपती सी।
मंजुल स्वप्नों की विस्मृति में
मन का उन्माद निखरता ज्यों:
सुरभित लहरों की छाया में
बुल्ले का विभव बिखरता ज्यों;
वैसीही माया में लिपटी
अधरों पर उँगली धरे हुए;
माधव के सरस कुतूहल का
आँखों में पानी भरे हुए।
नीरव निशीथ में लतिका सी
तुम कौन आ रहो हो बढ़ती ?
कोमल बाहें फैलाये सी
आलिंगन का जादू पढ़ती !

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

किन इन्द्रजाल के फूलों से
लेकर सुहाग कण राग भरे;
सिर नीचा कर हो गूँथ रही
माला जिससे मधु धार ढरे ?

पुलकित कदम्ब की माला सो
पहना देती हो अन्तर में:
झुक जाती है मन की डाली
अपनी फलभरता के डर में।

वरदान सदृश हो डाल रही
नीली किरणों से बुना हुआ,
यह आँचल कितना हलका सा
कितने सौरभ से सना हुआ।

सब अंग मोम से बनते हैं
कोमलता में बल खाती हूँ;
मैं सिमट रही सी अपने में
परिहास गीत सुन पाती हूँ।

स्मित बन जाती है तरल हँसी
नयनों में भर कर बाँकपना
प्रत्यक्ष देखती हूँ सब ज
वह बनता जाता है सपना।

मेरे सपनों में कलरव का
संसार आँख जब खोल रहा;
अनुराग समीरों पर तिरता
था इतराता सा डोल रहा।

अभिलाषा अपने यौवन में
उठती उस सुख के स्वागत को;

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़-प्रतिज्ञ सोच लो,
प्रशस्त पुण्य पन्थ है—बढ़े चलो, बढ़े चलो !"
असंख्य कीर्तिरश्मियाँ,
विकीर्ण दिव्यदाह-सी,
सपूत मातृ-भूमि के—
रुको न शूर साहसी !
अराति सैन्य सिन्धु में—सुवाडवाग्नि से जलो,
प्रवीर हो जयी बनो—बढ़े चलो बढ़े चलो ।
(चन्द्रगुप्त से)

लज्जा

कोमल किसलय के अंचल में
नन्ही कलिका ज्यों छिपती सी;
गोधूली के धूमिल पट में
दीपक के स्वर में दिपती सी ।
मंजुल स्वप्नों की विस्मृति में
मन का उन्माद निखरता ज्यों:
सुरभित लहरों की छाया में
बुल्ले का विभव बिखरता ज्यों;
वैसीही माया में लिपटी
अधरों पर उँगली धरे हुए;
माधव के सरस कुतूहल का
आँखों में पानी भरे हुए ।
नीरव निशीथ में लतिका सी
तुम कौन आ रहो हो बढ़ती ?
कोमल बाहें फैलाये सी
आलिंगन का जादू पढ़ती !

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

किन इन्द्रजाल के फूलों से
लेकर सुहाग कण राग भरे;
सिर नीचा कर हो गूँथ रही
माला जिससे मधु धार ढरे ?

पुलकित कदम्ब की माला सी
पहना देती हो अन्तर में:
झुक जाती है मन की डाली
अपनी फलभरता के डर में।

वरदान सदृश हो डाल रही
नीली किरणों से बुना हुआ,
यह आँचल कितना हलका सा
कितने सौरभ से सना हुआ।

सब अंग मोम से बनते हैं
कोमलता में बल खाती हूं;
मैं सिमट रही सी अपने में
परिहास गीत सुन पाती हूँ।

स्मित बन जाती है तरल हँसी
नयनों में भर कर बाँकपना
प्रत्यक्ष देखती हूँ सब ज
वह बनता जाता है सपना।

मेरे सपनों में कलरव का
संसार आँख जब खोल रहा;
अनुराग समीरों पर तिरता
था इतराता सा डोल रहा।

अभिलाषा अपने यौवन में
उठती उस सुख के स्वागत को;

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जीवन भर के बल वैभव से
सत्कृत करती दूरागत को।

किरणों का रज्जु समेट लिया
जिसका अवलंबन ले चढ़ती;
रस के निर्झर में धँस कर मैं
आनन्द शिखर के प्रति बढ़ती।

छूने में हिचक देखने में
पलकें आँखों पर झुकती हैं;
कलरव परिहास भरी गूँजें
अधरों तक सहसा रुकती हैं।

संकेत कर रही रोमाली
चुपचाप बरजती खड़ी रही;
भाषा बन भौंहों की काली
रेखा सी भ्रम में पड़ी रही।
तुम कौन? हृदय की परवशता?
सारी स्वतंत्रता छीन रहीं;
स्वच्छंद सुमन जो खिले रहे
जीवन वन से हो बीन रही!

संध्या की लाली में हँसती,
उसका ही आश्रय लेती सी;
छाया प्रतिमा गुनगुना उठी
श्रद्धा का उत्तर देती सी।

इतना न चमत्कृत हो बाले!
अपने मन का उपकार करो;
मैं एक पकड़ हूँ जो कहती
ठहरो कुछ सोच विचार करो।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अंबर चुंबी हिम शृंगों से
कलरव कोलाहल साथ लिये;
विद्युत की प्राणमयी धारा
वहती जिसमें उन्माद लिये।

मंगल कुंकम की श्री जिसमें
निखरी हो ऊषा की लाली;
भोला सुहाग इठलाता हो
ऐसी हो जिसमें हरियाली।

हो नयनों का कल्याण बना
आनंद सुमन सा विकसा हो;
वासंती के वन वैभव में
जिसका पंचम स्वर पिक सा हो;

जो गूँज उठे फिर नस-नस में
मूर्छना समान मचलता सा;
आँखों के साँचे में आकर
रमणीय रूप बन ढलता सा;

नयनों की नीलम की घाटी
जिस रस घन से छा जाती हो;
वह कौंध कि जिससे अंतर की
शीतलता ठंडक पाती हो।

हिल्लोल भरा हो ऋतुपति का
गोधूली की सी ममता हो;
जागरण प्रात सा हँसता हो
जिसमें मध्याह्न निखरता हो।

हो चकित निकल आई सहसा
जो अपने प्राची के घर से;

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उस नवल चन्द्रिका से बिछले
जो मानस की लहरों पर से।
फूलों की कोमल पंखड़ियां
बिखरे जिसके अभिनन्दन में;
मकरंद मिलातीं हो अपना
स्वागत के कुंकुम चन्दन में।

कोमल किसलय मर्मर रव से
जिसका जयघोष सुनाते हों;
जिसमें दुख सुख मिलकर मन के
उत्सव आनन्द मनाते हों।
उज्ज्वल वरदान चेतना का
सौंदर्य जिसे सब कहते हैं;
जिसमें अनंत अभिलाषा के
सपने सब जगते रहते हैं।

मैं उसी चपल की धात्री हूँ
गौरव महिमा हूँ सिखलाती
ठोकर जो लगने वाली है
उसको धीरे से समझाती।
मैं देव सृष्टि की रति रानी
निज पंच बाण से वंचित हो;
बन आवर्जना मूर्ति दीना
अपनी अतृप्ति सी संचित हो।

अवशिष्ट रह गई अनुभव में
अपनी अतीत असफलता सी;
लीला विलास की खेद भरी
अवसाद मयी श्रम दलिता सी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मैं रति की प्रतिकृति लज्जा हूँ
मैं शालीनता सिखाती;
मतवाली सुंदरता पग में
नूपुर सी लिपट मनाती हूँ।

लाली बन कपोलों में
आँखों में अंजन सी लगती;
कुंचित अलकों सी घुंघर
मन की मरोर बन कर जगती।

चंचल किशोर सुन्दरता की
मैं करती रहती रखवाली;
मैं वह हलकी सी मसलन हूँ
जो बनती कानों की लाली॥

हाँ ठीक परन्तु बताओगी
मेरे जीवन का पथ क्या है?
इस निबिड़ निशा में संसृति की
आलोक मयी रेखा क्या है?

यह आज समझ तो पाई हूँ
मैं दुर्बलता में नारी हूँ;
अवयव की सुन्दर कोमलता
लेकर मैं सब से हारी हूँ।

पर मन भी क्यों इतना ढीला
अपने ही होता जाता है
घनश्याम खंड सी आँखों में
क्यों सहसा जल भर आता है?

सर्वस्व समर्पण करने की
विश्वास महा तरु छाया में;

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चुप चाप पड़ी रहने की क्यों
ममता जगती है माया में ?

छाया पथ में तारक द्युति सी
झिल मिल करने की मधु लीला;
अभिनय करती क्यों इस मन में
कोमल निरीहता श्रम शीला ?

निस्संबल होकर तिरती हूँ
इस मानस की गहराई में
चाहती नहीं जागरण कभी
सपने की इस सुघराई में।

नारी जीवन का चित्र यही
क्या ? विकल रंग भर देती हो;
अस्फुट रेखा की सीमा में;
आकार कला को देती हो।

रुकती हूँ और ठहरती हूँ
पर सोच बिचार न कर सकती;
पगली सी कोई अंतर में
बैठी जैसे अनुदिन बकती

मैं जभी तोलने का करती
उपचार स्वयं तुल जाती हूँ;
भुज लता फँसा कर नर तरु से
झूले सी झोंके खाती हूँ।

इस अर्पण में कुछ और नहीं
केवल उत्सर्ग छलकता है;
मैं दे दूँ और न फिर कुछ लूँ
इतना ही सरल झलकता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

क्या कहती हो ठहरो नारी!
संकल्प अश्रु जल से अपने;
तुम दान कर चुकी पहले ही
जीवन के सोने से सपने।

नारी! तुम केवल श्रद्धा हो
विश्वास रजत नग पग तल में;
पीयूष स्रोत सी बहा करो
जीवन के सुन्दर समतल में।

देवों की विजय, दानवों की
हारों का होता युद्ध रहा;
संघर्ष सदा उर अंतर में
जीवित रह नित्य विरुद्ध रहा

आँसू से भीगे अंचल पर
मन का सब कुछ रखना होगा;
तुम को अपनी स्मित रेखा से
यह सन्धि पत्र लिखना होगा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

१५

सुमित्रानन्दन पन्त

द्विवेदी-युग के अन्त और आधुनिक काल के तृतीय उत्थान के साथ-साथ काव्य में स्वानुभूति-निरूपक और व्यक्तित्व प्रदर्शक मुक्तक गीतों का बाहुल्य हो चला। यह युग मुख्यतः मुक्तक गीतों का युग है। अंग्रेज़ी के शेली प्रभृति रोमान्टिक कवियों और विश्व-कवि रवि ठाकुर के काव्य से प्रेरणा लेकर हिन्दी के युगान्तरकारी कवि पन्त ने अपनी काव्य-साधना आरम्भ की और शीघ्र ही अपनी एक विशिष्ट पद्धति का विकास कर लिया। उनके काव्य की छटा अपने पूर्ववर्ती काव्य से भिन्न है। प्रकृति के पालने में पलने वाले इस प्रकृति-प्रेमी कवि ने हिंदी-भारती के भण्डार को प्रेम और प्रकृति-सौन्दर्य के अभूत-पूर्व चित्रों से भर दिया।

श्री० सुमित्रानन्दन पन्त का जन्म अलमोड़ा के अन्तर्गत कौसानी ग्राम में २४ मई सन् १९०० को हुआ। जन्म के ६ घण्टे बाद ही माता का अवसान हो गया किन्तु स्नेहालु पिता श्री० गङ्गादत्त पन्त ने उन्हें माता का अभाव कभी खटकने न दिया। पन्त जी अपने कालेज-जीवन में ही काव्य-रचना में प्रवृत्त हो चुके थे। पाश्चात्य साहित्यकारों के तथा संस्कृत के काव्य-ग्रन्थों का अध्ययन और भारतीय दर्शन, उपनिषद् तथा धर्म-शास्त्रों का मनन पन्त जी ने अच्छी तरह किया है।

वीणा, उच्छ्वास, ग्रन्थि, पल्लव, गुन्जन, युगांत, युगवाणी, ग्राम्या, स्वर्ण किरण, स्वर्ण धूलि, उत्तरा, युगपथ आदि पन्तजी की प्रमुख रचनाएँ हैं।

स्वच्छन्दतावाद के दो मुख्य लक्षण हैं—जिज्ञासा और सौन्दर्य-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रेम। छायावादी काव्य में ये दोनों पूरी तरह विद्यमान हैं। सौन्दर्य-लालसा का सबसे अधिक विकसित रूप पन्त के काव्य में पाया जाता है। पन्त को काव्य-प्रेरणा सबसे पहले प्रकृति से मिली। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है, 'कविता की प्रेरणा मुझे सबसे पहले प्रकृति-निरीक्षण से मिली जिसका श्रेय मेरी जन्मभूमि कूर्माचल-प्रदेश को है।' कवि को प्रकृति के कण-कण में जीवन बिखरा दिखाई देता है; उसे प्रकृति में सहज अनुराग है; उसकी हर बारीकी से कवि अच्छी तरह परिचित है। प्राकृतिक रंग-रूपों को वाणी देकर कवि ने जो चित्र उतारे हैं, वे उसकी असाधारण प्रतिभा के द्योतक हैं। प्राकृतिक-व्यापारों में एक अतीन्द्रिय कोमलता है; उसके प्रति जिज्ञासा-भाव के सबसे मनोहर चित्र पन्त की लेखनी से उद्भूत हुए हैं। प्रकृति का ऐसा दिव्य रूप भारतीय साहित्य में कालिदास और भवभूति के बाद शायद पन्त में ही मिलेगा। परोक्ष का आकर्षण कवि को पार्थिव धरातल से ऊपर उठा ले जाता है। प्रकृति के हर व्यापार में परोक्ष-सत्ता के रहस्यमय-स्पर्श की अनुभूति होती है—"अहे! सुख-दुःख के सहचर मौन? नहीं कह सकता तुम हो कौन!"

प्रेम-भावना के अन्तर्गत कवि ने मन की वेदना की अनुभूतियों के चित्र खींचे हैं। वियोग-जनित वेदना की आँच में तपकर ही कविता का जन्म होता है। कवि की ये पंक्तियाँ बड़ी लोकप्रिय हैं:—

"वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान;
उमड़कर आँखों से चुपचाप, बही होगी कविता अनजान।"

प्राकृतिक सौन्दर्य के अतिरिक्त नारी-सौन्दर्य भी कवि के लिए एक आकर्षण की वस्तु है पर नारी के प्रति उसका आकर्षण सदा अतीन्द्रिय रहा है। उसमें वासना का पुट नहीं। छायावादी- काव्य में अतीन्द्रियता रीतिकालीन स्थूलता की प्रतिक्रिया थी। कवि द्वारा प्रस्तुत नवयुग की नारी का स्वरूप अभिनन्दनीय है—पुरुष-वासना से पीड़ित नारी के प्रति उसकी हार्दिक सहानुभूति है—वह चाहता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है—'उसे मानवी का गौरव दे, पूर्ण सत्त्व दो नूतन; उसका मुख जग का प्रकाश हो, उठे अंध अवगुंठन।' वह चाहता है कि युग-युग की बंदिनी नारी पुरुष के साथ कर्म पथ पर अग्रसर हो—'मुक्त करो जीवन-संगिनि को, जननि देवि को आदृत; जग-जीवन में मानव के संग, हो मानवी प्रतिष्ठित।' 'गुञ्जन' में पन्त ने मानव-जीवन के प्रति एक दार्शनिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। जीवन के लिए सुख-दुःख दोनों ही आवश्यक हैं—'सुख-दुःख के मधुर मिलन से यह जीवन हो परिपूरण।' फिर वह कहता है कि ये सुख-दु:ख तो अस्थिर हैं लेकिन जीवन नित्य है—चिरन्तन !

युगवाणी और ग्राम्या में बुद्धि तत्त्व की प्रधानता के कारण कवि का विचारक रूप ऊपर उभर आया है। कवि ने उसे 'गीतगद्य' कहा है। इसमें कवि राजनीतिक वादों में उलझ गया है और उसने गांधी-वाद और मार्क्सवाद के बीच एक स्वतन्त्र मार्ग निर्धारित किया है। 'ग्राम्या' में हम कवि को देश की प्रगति-विरोधी शक्तियों से मोर्चा लेते हुए पाते हैं। वह व्यंग्य, परिहास और कटुसूक्तियों से काम लेता है। कवि समूचे विश्व को ग्रामीण नयन से देखता है—'देख रहा हूँ निखिल विश्व को मैं ग्रामीण नयन से।' उसने ग्रामीणों को अपनी बौद्धिक सहानुभूति दी है।

भाषा और भाव का जैसा सन्दर समन्वय पन्त में पाया जाता है, वैसा विश्व-साहित्य के इने गिने कवियों में ही मिलेगा। खड़ी बोली के काव्योपयोगी भाषा न होने के आरोप उन्होंने निमूल सिद्ध कर दिए। 'प्रसादजी' की तरह उनमें भी तत्सम शब्दों के प्रयोग के प्रति काफ़ी आग्रह दिखाई पड़ता है। शब्द-चयन उनकी परिष्कृत रुचि का परिचायक है। उन्होंने विशेषण-विपर्यय, मानवीकरण और लाक्षणिक प्रयोगों द्वारा भाषा को समृद्ध किया है। वह शब्दों द्वारा वर्णित विषय का चित्र-सा उतार देते हैं। उनकी शब्द-योजना में संगीतमय-लालित्य होता है। अपनी सब कविताओं में उन्होंने मात्रिक छन्दों का प्रयोग

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

किया है जिनमें लय का विशेष ध्यान रखा जाता है। इस काल में नूतन अभिव्यञ्जना-शैली और अभिनव-छन्द-विधान की उद्भावनाएँ हुई हैं और इनमें पंतजी का महत्वपूर्ण योग रहा है।

पन्त के काव्य में काव्य, चित्र और संगीत का मनोहारी सामञ्जस्य है। वे इस युग के सर्वश्रेष्ठ कवियों में हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सुमित्रानन्दन पंत

मौन निमन्त्रण

स्तब्ध ज्योत्स्ना में जब संसार
चकित रहता शिशु सा नादान,
विश्व के पलकों पर सुकुमार
विचरते हैं जब स्वप्न अजान;
न जाने, नक्षत्रों से कौन
निमन्त्रण देता मुझको मौन !

सघन मेघों का भीमाकाश
गरजता है जब तमसाकार,
दीर्घ भरता समीर निःश्वास,
प्रखर झरती जब पावस धार;
न जाने, तपक तड़ित में कौन
मुझे इंगित करता तब मौन !

देख वसुधा का यौवन भार
गूँज उठता है जब मधुमास,
विधुर उर के से मृदु उद्गार
कुसुम जब खुल पड़ते सोच्छ्वास;
न जाने, सौरभ के मिस कौन
सँदेशा मुझे भेजता मौन !

क्षुब्ध जल शिखरों को जब वात
सिन्धु में मथकर फेनाकार,
बुलबुलों का व्याकुल संसार
बना, बिथुरा देती अज्ञात;

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उठा तव लहरों से कर कौन
न जाने, मुझे बुलाता मौन !

स्वर्ण, सुख, श्री, सौरभ में भोर
विश्व को देती है जब बोर,
विहग कुल की कल कंठ हिलोर
मिला देती भू नभ के छोर,
न जाने, अलस पलक दल कौन
खोल देता तब मेरे मौन।

तुमुल तम में जब एकाकार
ऊँघता एक साथ संसार,
भीरु झींगुर कुल की झनकार
कँपा देती तन्द्रा के तार;
न जाने, खद्योतों से कौन
मुझे पथ दिखलाता तब मौन !

कनक छाया में, जब कि सकाल
खोलती कलिका उर के द्वार,
सुरभि पीड़ित मधुपों के बाल
तड़प, बन जाते हैं गुंजार;
न जाने, ढुलक ओस में कौन
खींच लेता मेरे दृग मौन !

(बालापन)

वह ज्योत्स्ना से हर्षित मेरा
कलित कल्पनामय संसार,
तारों के विस्मय से विकसित
विपुल भावनाओं का हार;

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अहो कल्पनामय! फिर रच दो
वह मेरा निर्भय अज्ञान,
मेरे अधरों पर वह माँ के
दूध से धुली मृदु मुसकान।

इस अभिमानी अंचल में फिर
अंकित करदो, विधि! अकलंक,
मेरा छीना बालापन फिर
करुण! लगादो मेरे अंक!

विहग बालिका का सा मृदु स्वर,
अर्ध खिले, नव, कोमल अंग,
क्रीड़ा कौतूहलता मन की,
वह मेरी आनन्द उमंग,

अहो दयामय! फिर लौटा दो
मेरी पद प्रिय चंचलता,
तरल तरंगों सी वह लीला,
निर्विकार भावना लता।

धूलभरे, घुंघराले, काले,
भय्या को प्रिय मेरे बाल,
माता के चिर चुम्बित मेरे
गोरे, गोरे, सस्मित गाल,

हे विधि! फिर अनुवादित कर दो
उसी सुधा स्मिति में अनुपम
माँ के तन्मय उर से मेरे
जीवन का तुतला उपक्रम!

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नौका विहार

शांत स्निग्ध, ज्योत्स्ना उज्ज्वल।
अपलक अनन्त, नीरव भूतल।
सैकत शैया पर दुग्ध धवल, तन्वगी गंगा ग्रीष्म विरल,
लेटी है श्रांत, क्लांत, निश्चल।

तापस बाला गंगा निर्मल शशि मुख से दीपित मृदु करतल,
लहरे उर पर कोमल कुंतल
गोरे अंगों पर सिहर सिहर, लहराता तार तरल सुन्दर
चंचल अंचल सा नीलांबर।

साड़ी की सिकुड़न सी जिसपर, शशि की रेशमी विभा से भर,
सिमटी हैं वर्तुल, मृदुल लहर।
चाँदनी रात का प्रथम प्रहर,
हम चले नाव लेकर सत्वर।

सिकता की सस्मित सीपी पर मोती की ज्योत्स्ना रही विचर,
लो, पालें बँधीं, खुले लंगर।

मृदु मंद, मंद, मंथर, मंथर लघु तरणि, हंसिनी सी सुन्दर,
तिर रही, खोल पालों के पर।

निश्चल जल के शुचि दर्पण पर, बिम्बित हो रजत पुलिन निर्भर,
दुहरे ऊँचे लगते क्षण भर।

कालाकांकर का राजभवन, सोया जल में निश्चिन्त, प्रमन,
पलकों में वैभव स्वप्न सघन।
नौका से उठतीं जल हिलोर,
हिल पड़ते नभ के ओर छोर।

विस्फारित नयनों से निश्चल, कुछ खोज रहे चल तारक दल,
ज्योतित कर जल का अन्तस्तल;

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जिनके लघु दीपक को चंचल, अंचल, की ओट किए अविरल,
फिरतीं लहरें लुक छिप पल पल।

सामने शुक्र की छवि झलमल, पैरती परी सी जल में कल,
रुपहरे कचों में हो ओझल।

लहरों के घूँघट से झुक झुक, दशमी का शशि निज तिर्यक् मुख
दिखलाता, मुग्धा सा रुक रुक।
अब पहुँची चपला बीच धार,
छिप गया चाँदनी का कगार।

दो बाँहों से दूरस्थ तीर, धारा का कृश कोमल शरीर,
आलिंगन करने को अधीर।

अति दूर, क्षितिज पर विटप माल, लगती भ्रू रेखा सी अराल,
अपलक नभ नील नयन विशाल;

माँ के उर पर शिशु सा, समीप, सोया धारा में एक द्वीप,
ऊर्मिल प्रवाह को कर प्रतीप,

वह कौन विहग? क्या विकल कोक, उड़ता, हरने निज विरहशोक?
छाया की कोकी को विलोक।
पतवार घुसा, अब प्रतनु भार
नौका घूमी विपरीत धार।

डाँडों के चल करतल पसार, भर भर मुक्ताफल फेन स्फार,
बिखराती जल में तार सरल।

चाँदी के साँपों सी रलमल नाचतीं रश्मियाँ जल में चल,
रेखाओं सी खिंच तरल हार।

लहरों की लतिकाओं में खिल, सौ सौ शशि सौ सौ उडु झिलमिल,
फैले फूले जल में फेनिल।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अब उथला सरिता का प्रवाह, लग्गी से ले ले सहज थाह,
हम बढ़े घाट को सहोत्साह।
ज्यों ज्यों लगती है नाव पार
उर में आलोकित शत विचार।

इस धारा सा ही जग का क्रम, शाश्वत इस जीवन का उद्गम,
शाश्वत है गति शाश्वत संगम।

शाश्वत नभ का नीला विकास, शाश्वत शशि का यह रजत हास,
शाश्वत लघु लहरों का विलास।

हे जग जीवन के कर्णधार। चिर जन्म मरण के आर पार,
शाश्वत जीवन नौका विहार।

मैं भूल गया अस्तित्व ज्ञान, जीवन का यह शाश्वत प्रमाण,
करता मुझको अमरत्व दान।

तप रे

तप रे मधुर मधुर मन!
विश्व वेदना में तप प्रतिपल,
जग जीवन की ज्वाला में जल,
बन अकलुष, उज्ज्वल में गल,
तप रे विधुर विधुर मन।
अपने सजल स्वर्ण से पावन
रच जीवन की मूर्ति पूर्णतम,
स्थापित कर जग में अपनापन,
ढल रे ढल रे आतुर मन।
तेरी मधुर मुक्ति ही बंधन,
गंध हीन तू गंध युक्त बन,
निज अरूप में भर स्वरूप, मन।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मूर्तिवान बन, निर्धन ।
गल रे गल निष्ठुर मन ।

मानव-स्तव

न्योछावर स्वर्ग इसी भू पर,
देवता यही मानव शोभन,

अविराम प्रेम की बाँहों में
है मुक्ति यही जीवन-बन्धन ?
है रे न दिशावधि का मानव,
वह चिर पुराण, वह चिर नूतन,

मानव के हैं सब जाति, वर्ण,
सब धर्म, ज्ञान, संस्कृति, बल धन !

मृन्मय प्रदीप में दीपित हम
शाश्वत प्रकाश की शिखा सुषम,

हम एक ज्योति के दीप अखिल,
ज्योतित जिससे जग का आँगन

हम पृथ्वी की प्रिय तारावलि
जीवन बसंत के मुकुल, सुमन,

सुरभित सख से गृह गृह, उपवन,
उर-उर में पूर्ण प्रेम मधु धन !

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भारतमाता

भारतमाता
ग्राम वासिनी।
खेतों में फैला के श्यामल
धूल भरा मैला सा आँचल,
गंगा यमुना में आँसू जल,
मिट्टी की प्रतिमा
उदासिनी

दैन्य जड़ित अपलक नत चितवन,
अधरों में चिर नीरव रोदन
युग युग के तम से विषण्ण मन,
वह अपने घर में
प्रवासिनी ।

तीस कोटि सन्तान नग्न तन,
अर्ध क्षुधित, शोषित निरस्त्र जन,
मूढ़ असभ्य, अशिक्षित, निर्धन,
नतमस्तक
तरु-तल निवासिनी

स्वर्ण शस्य पर-पद तल लुंठित,
धरती सा सहिष्णु मन कुंठित,
क्रंदन कंपित अधर मौन स्मित,
राहु ग्रसित
शरदेन्दु हासिनी ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चिन्तित भृकुटि क्षितिज तिमिरांकित,
नमित नयन नभ वाष्पाच्छादित,
आनन श्री छाया-शशि उपमित,

ज्ञान मूढ़
गीता प्रकाशिनी।

सफल आज उसका तप संयम
पिला अहिंसा स्तन्य सुधोपम,
हरती जन मन भव तम भ्रम,

जग जननी
जीवन विकासिनी।

हिमाद्रि

मानदण्ड भू के अखण्ड हे,
पुण्य धरा के स्वर्गारोहण,
प्रिय हिमाद्रि, तुमको हिमकण से
घेरे मेरे जीवन के क्षण।
मुझ अंचल वासी को तुमने
शैशव में आशी दी पावन,
नभ में नयनों को खो, तब से
स्वप्नों का अभिलाषी जीवन।

कब से शब्दों के शिखरों में
तुम्हें चाहता करना चित्रित
शुभ्र शान्ति में समाधिस्थ हे
शाश्वत सुन्दरता के भूभृत।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बाह्य चेतना मेरी तुमसे
जड़ीभूत आनन्द तरंगित,
तुम्हें देख सौंदर्य साधना
मेरी महाश्चर्य से विस्मित।

जिन शिखरों को स्वर्ण किरण नित
ज्योति मुकुट से करतीं मण्डित,
जिन पर सहसा स्खलित तड़ित
हो उठती निज आलोक से चकित।
जिन शिखरों पर रजत पूर्णिमा
सिन्धु ज्वार सी लगती स्तम्भित,
जिनकी नीरवता में मेरे
गीत स्वप्न रहते थे झंकृत।

जिनकी शीतल ज्वाला में जल
बनी चेतना मेरी निर्मल,
प्राण हुए आलोकित जिनके
स्वर्गोन्नत सौंदर्य से सजल।
हृदय चाहता काव्य कल्पना को
किरीट पहनाना उज्ज्वल
स्मृति में ज्योति तरंगित स्वर्गिक
शृंगों के आलोक का तरल।

वसुधा को महदाकांक्षा से
स्वर्ग क्षितिज से भी उठ ऊपर
अन्तर आलोकित से स्थित तुम
अमरों का उल्लास पान कर।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उरोभार से तरुण धरणि के
सोया स्वर्ग शीष धर जिस पर,
तुम भारत के शाश्वत गौरव
प्रहरी से जागरित निरंतर।

रवि की किरणें जिसे स्पर्श कर
हो उठतीं आलोक निनादित,
जिस पर ऊषा सन्ध्या की छवि
आदि सृष्टि सी ही स्वर्णांकित।
इन्दु स्फीत तुम स्फटिक धवलिमा
के क्षीरोदधि से हिल्लोलित
ज्योत्सना में थे स्वप्न मौन
अप्सरा लोक से लगते मोहित।

नवल प्रवालों की रत्नश्री
अहरह रहती जहाँ मर्मरित,
देवदारु की चारु सूचियों से
प्रिय तलहटियाँ रोमांचित।
रंग रूप से रहित वहाँ तुम
चिर दिगंत स्मिति से थे शोभित,
आदि तत्व से, अपनी ही शोभा
विलोक मानो अनिमेषित।

नीली छाएँ थीं तन पर
लगतीं आभा की सी सिकुड़न,
इन्द्र किरण मंडल से दीपित
उड़ते थे शत हँसमुख हिमकण।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

स्वदूतों के पंखों से घिर
तड़ित चकित हिम के रोमिल घन
रंगों से वेष्टित रखते थे
तुमको हे आलोक निरंजन।

प्रति वत्सर आती थी मधुऋतु
सद्यः स्फुट देही ले कुसुमित
चीर रश्मियों को, फूलों के
अंगों में निज कर शत रंजित।
खुलती पंखड़ियों की कंचुक
सौरभ श्वासों से थी स्पंदित,
मेरे शैशव को नित उसकी
गीत कोकिला रखती कूजित।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

१६

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

ब्रजभाषा काव्य के क्षीण होते हुए प्रभाव के साथ ही साथ दूसरी ओर खड़ी बोली में जो सबसे बड़ी क्रान्ति हुई उसके प्रमुख उन्नायकों में कविवर श्री० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' भी थे। नवयुग के अभिनव प्रयोगों के आरम्भ में यों तो प्रसाद और पंत का भी विरोध हुआ किन्तु सबसे अधिक विरोध यदि किसी का हुआ तो 'निराला' का और प्राचीनता-प्रेमियों और रूढ़िवादियों से सबसे जमकर अगर किसी ने मोर्चा लिया और कभी सिर न झुकाया तो निराला ने। इस युग के कवियों में विद्रोह की सबसे तीव्र हुंकार निराला जी के ही काव्य में ध्वनित होती है और उनके काव्य में उनके सुदृढ़ और ओजपूर्ण व्यक्तित्व का सबसे अधिक प्रकाशन हुआ है।

निराला जी का जन्म बंगाल के महिषादल राज्य में सं० १९५३ में हुआ। इनके पिता का नाम पं० रामसहाय त्रिपाठी था। मूलरूप में वे उत्तर-प्रदेश के उन्नाव ज़िले के निवासी हैं। बंगाल में शिक्षा प्राप्त करने के कारण बंगला-साहित्य का भी उन्होंने अच्छा अध्ययन किया। संस्कृत साहित्य का निरालाजी ने गम्भीर मनन किया है। दर्शन से उन्हें विशेष प्रेम रहा है और इसी दार्शनिक भावना से उनकी मानसिक पृष्ठभूमि तैयार हुई। बाद में द्विवेदी जी के आदेश से बैलूर जाकर इन्होंने रामकृष्ण-मिशन के अद्वैत-आश्रम के मुख-पत्र 'समन्वय' का सम्पादन किया। वहाँ उन्होंने स्वामी विवेकानन्द और रामकृष्ण परमहंस के जीवन-दर्शन और सिद्धान्तों का भी अध्ययन किया। इसके बाद कलकत्ते आकर उन्होंने 'मतवाला' निकाला।

निराला की प्रतिभा बहुमुखी है। उन्होंने काव्य-रचना के अतिरिक्त

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

साहित्य के अन्य अंगों की भी समृद्धि की है। इनके कई उपन्यास, जीवनियाँ, रेखा-चित्र, कहानी-संग्रह और निबन्ध-संग्रह प्रकाशित हो हो चुके हैं। परिमल, गीतिका, तुलसीदास, अनामिका, अणिमा, कुकुरमुत्ता आदि इनके प्रमुख काव्य-ग्रंथ हैं।

दार्शनिक-क्षेत्र में निरालाजी अद्वैतवाद के समर्थक हैं। उनकी दार्शनिक रचनाओं में बुद्धितत्त्व का पुट है लेकिन ऐसा नहीं कि जिसमें काव्यत्व दब गया हो। उनकी रहस्य-भावना मात्र शुष्क ज्ञान की भित्ति पर स्थित नहीं वरन् अनुभूति की सरसता लिए हुए है। इस सरसता ने उनकी दार्शनिक रचनाओं को कोरे सिद्धान्त वाक्य बनने से बचा लिया है। 'तुम और मैं' निराला जी की सबसे सुन्दर और लोकप्रिय दार्शनिक रचनाओं में है।

किन्तु निराला जी ने अपने आपको इस रहस्य भावना की अभिव्यक्ति तक ही बाँधकर नहीं रखा है। उनके प्रगीतों (लीरिक-कविताओं) में छायावादी शैली का सफल चित्रण हुआ है। इनमें शृंगारिक भावों का प्राधान्य है। 'जुही की कली' इस ढंग की सबसे प्रसिद्ध और प्रौढ़ कविता है जिसकी रचना उन्होंने अपने कविता काल के आरम्भ में ही की थी। 'जागो फिर एक बार', 'राम की शक्ति-पूजा' ओजस्विता से ओत-प्रोत रचनाएँ हैं। 'जागो फिर एक बार' में कवि ने राष्ट्रीय-चेतना को वाणी दी है। वर्णनात्मक कविताओं में 'तुलसीदास' खण्ड काव्य आता है जो निराला जी की सर्वश्रेष्ठ रचनाओं में है। इसमें कवि ने गोस्वामी जी की अध्यात्म परायणता और मनोवैज्ञानिक संघर्ष का सुन्दर चित्र खींचा हैं।

निराला जी ने अपने प्रगतिशील विचारों और भावनाओं की अभिव्यक्ति 'तोड़ती पत्थर' आदि कविताओं में की है। 'तोड़ती पत्थर' में कवि ने अपनी लेखनी-तूलिका से एक मज़दूरिन का चित्र उतारा है। निराला जी ने उस वर्ग को अपनी सहानुभूति दी है जिसकी स्थिति अभाव और दुःख-दरिद्रता को लेकर है, जिन्होंने शोषण दमन

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

के अतिरिक्त जीवन में कुछ नहीं देखा। इस ढंग की कविताएँ 'नए पत्ते' में हैं। इनमें कवि ने ग्रामीणों का बड़ा सजीव चित्रण किया है। निराला ने समाज और सामाजिक विषमताओं को लक्ष्यकर जो कविताएं लिखीं हैं उनमें बड़े तीखे व्यंग्य और हास्य का पुट है। कुकुरमुत्ता में कवि ने पूँजीपतियों का खाका खींचा है। उनका व्यंग्य बड़ा मार्मिक और चुटीला है। निराला का प्रकृति चित्रण भी परिपाटीबद्ध वर्णनों से भिन्न हैं। सन्ध्या सुन्दरी का उन्होंने जैसा चित्र खींचा है वैसा शायद भारतीय भाषाओं के काव्य में अन्यत्र नहीं मिल सकता।

निराला जी की भाषा संस्कृत-शब्द बहुला है। लम्बे समास बनाने की प्रवृत्ति उनमें बहुत दिखाई पड़ती है। उसमें यद्यपि माधुर्य की कमी नहीं तथापि निराला के व्यक्तित्व की तरह ओज ही उसका प्रधान गुण है। विषय-दुरुहता के कारण कहीं-कहीं प्रसाद-गुण का अभाव हो गया है लेकिन बहुत कम। मुक्त-छंद निराला जी की अमर देन हैं। संगीतात्मकता भी इनके काव्य की एक विशेषता है। कण्ट-काकीर्ण संकीर्ण पथ से कविता-कामिनी को निकालकर प्रशस्त मार्ग पर लाने का सराहनीय प्रयास निराला जी ने किया। रबड़-छंद, केंचवा छंद आदि कह कर आरम्भ में इनका मज़ाक उड़ाया गया। प्राचीनता प्रेमियों को निरस्त्र करने के लिए निराला ने 'परिमल' की भूमिका में वेदों से उदाहरण दिए हैं। उन्होंने लिखा है—'अजी, स्वयं परमात्मा जब यह रबड़ छंद और केंचवा छंद लिख सकते हैं, तो मैंने कौन-सा कसूर कर डाला।' निराला की भाषा प्रतीक-विधायिनी और भावानुगामिनी है। पंत जी ने साहित्य के इस निर्भीक और स्पष्टवादी महारथी की प्रशस्ति में सत्य ही लिखा है—

छंद-बंध ध्रुव तोड़, छोड़कर पर्वत कारा,
अचल रूढ़ियों की, कवि तेरी कविता धारा।
मुक्त, अमोघ, अमंद, रजत-निर्झर-सी निःसृत।
अमृत-पुत्र कवि, यशःकाय तव जरा-मरण-जित,
स्वयं भारती से तेरी हृतन्त्री झंकृत।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सूर्य कान्त त्रिपाठी 'निराला'

जय

भारति, जय, विजय करे !
कनक-शस्य-कमल धरे !
लंका पदतल- शतदल
गर्जितोर्मि सागर-जल
धोता शुचि चरण-युगल
स्तव कर बहु अर्थ भरे।

तरु-तृण-वन-लता- वसन
अञ्चल में खचित सुमन,
गंगा ज्योतिर्जल - कण
धवल-धार हार गले !
मुकुट शुभ्र हिम-तुषार
प्राण - प्रणव ओंकार
ध्वनित दिशाएँ उदार
शत मुख-शतरव-मुखरे !
भारति, जय, विजय करे !
कनक-शस्य कमल-धरे !

विधवा

वह इष्ट देव के मंदिर की पूजा सी,
वह दीप शिखा सी शान्त, भाव में लीन,
वह क्रूर काल तांडव की स्मृति रेखा सी,
वह टूटे तरु की छुटी लता सी दीन,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दलित भारत की ही विधवा है।
षड् ऋतुओं का शृङ्गार,
कुसुमित कानन में नीरव पद संचार,
अमर कल्पना में स्वच्छन्द विहार,
व्यथा की भूली हुई कथा है,
उसका एक स्वप्न अथवा है।
उसके मधु सुहाग का दर्पण,
जिसमें देखा था उसने
बस एक बार विम्बित अपना जीवनधन,
अबल हाथों का एक सहारा,
लक्ष्य जीवन का प्यारा वह ध्रुवतारा,
दूर हुआ वह बहा रहा है,
उस अनन्त पथ से करुणा की धारा।
हैं करुणा रस से पुलकित इसकी आँखें,
देखा तो भीगीं मन मधुकर की पाँखें,
मृदु रसावेश में निकला जो गुंजार,
यह और न था कुछ, था बस हाहाकार।
उस करुणा की सरिता के मलिन पुलिन पर,
लघु टूटी हुई कुटी का मौन बढ़ाकर,
अति छिन्न हुए भीगे अंचल में मन को,
दुख रूखे सूखे अधर त्रस्त चितवन को,
वह दुनिया की नज़रों से दूर बचाकर,
रोती है अस्फुट स्वर में,
दुख सुनता है आकाश धीर,
निश्चल समीर,
सरिता की वे लहरें भी ठहर ठहरकर।
कौन उसको धीरज दे सके ?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दुःख का भार कौन ले सके ?
यह दुःख वह जिसका नहीं कुछ छोर है,
दैव अत्याचार कैसा घोर और कठोर है।
क्या सभी पोंछें किसी को अश्रुजल ?
या किया करते रहे सबको विकल ?
ओस कण सा पल्लवों से झर गया।
जो अश्रु, भारत का उसी से सर गया।

जागो फिर एक बार

जागो फिर एक बार !
प्यारे जगाते हुए हारे सब तारे तुम्हें
अरुण पंख तरुण किरण
खड़ी खोलती है द्वार
जागो फिर एक बार !
आँखें अलियों सी
किस मधु की गलियों में फँसीं,
बन्द कर पाँखें
पी रही हैं मधु मौन
या सोई कमल कोरकों में ?
बन्द हो रहा गुंजार
जागो फिर एक बार !
अस्ताचल ढले रवि,
शशि छवि विभावरी में
चित्रित हुई है देख
यामिनी गन्धा जगी,
एक टक चकोर दर्शन प्रिय,
आशाओं भरी मौन भाषा बहुभावमयी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

घेर रहा चन्द्र को चाव से,
शिशिर भार व्याकुल कुल
खुले फूल झुके हुए,
आया कलियों में मधुर
मद उर यौवन उभार

जागो फिर एक बार !
पिउ रव पपीहे प्रिय बोल रहे,
सेज पर विरह विदग्धा वधू
याद कर बीती बातें, रातें मन मिलन की
मूँद रही पलकें चारु,
नयन जल ढल गए,
लघुतर कर व्यथा भार

जागो फिर एक बार !
सहृदय समीर जैसे
पोंछो प्रिय, नयन नीर
शयन शिथिल बाहें
भर स्वप्निल आवेश में,
आतुर उर वसन मुक्त कर दो,
सब सुप्ति सुखोन्माद हो;
छूट छूट अलस
फैल जाने दो पीठ पर
कल्पना से कोमल
ऋजु कुटिल प्रसार कामी केश गुच्छ।
तन मन थक जायँ,
मृदु सुरभि सी समीर में
बुद्धि बुद्धि में हो लीन,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मन में मन, जी जी में,
एक अनुभव बहता रहे
उभय आत्माओं में,
कब से मैं रही पुकार
जागो फिर एक बार !
उगे अरुणाचल में रवि
आई भारती रति कवि कंठ में,
क्षण क्षण में परिवर्तित
होते रहे प्रकृति पट,
गया दिन, आई रात,
गई रात, खुला दिन,
ऐसे ही संसार के बीते दिन, पक्ष, मास,
वर्ष कितने हजार
जागो फिर एक बार !

दिल्ली

क्या यह वही देश है
भीमार्जुन आदि का कीर्ति क्षेत्र,
चिरकुमार भीष्म की पताका ब्रह्मचर्य दीप्त
उड़ती है आज भी जहाँ के वायुमंडल में
उज्जवल, अधीर और चिर नवीन ?
श्रीमुख से कृष्ण के सुना था जहाँ भारत ने
गीत गीता सिंहनाद
मर्मवाणी जीवन संग्राम की
सार्थक समन्वय ज्ञान कर्म भक्ति योग का ?
यह वही देश है
परिवर्तित होता हुआ ही देखा गया जहाँ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भारत का भाग्य चक्र ?
आकर्षण तृष्णा का
खींचता ही रहा जहाँ पृथ्वी के देशों को
स्वर्ण प्रतिमा की ओर ?
उठा जहाँ शब्द घोर
संसृति के शक्तिमान दस्युओं का अदमनीय,
पुनः पुनः बर्बरता विजय पाती गई
सभ्यता पर, संस्कृति पर,
काँपे सदा रे अधर जहाँ रक्तधारा लख
आरक्त ही सदैव।
क्या यह वही देश है
यमुना पुलिन से चल
पृथ्वी की चिता पर
नारियों की महिमा उस सती संयोगिता ने
किया आहूत जहाँ विजित स्वजातियों को
आत्म बलिदान से
पढ़ो रे, पढ़ो रे पाठ,
भारत के अपवाश्वस्त अवनत ललाट पर
निज चिताभस्म की टीका लगाते हुए,
सुनते ही रहे खड़े भय से विवर्ण जहाँ
अविश्वस्त संज्ञाहीन पतित आत्मविस्मत नर ?
बीत गये कितने काल,
क्या यह वही देश है
बदले किरीट जिसने सैकड़ों महीप भाल ?
क्या यह वही देश है
सन्ध्या की स्वर्णवर्ण किरणों में
दिग्वधू अतन हाथों से

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

थी भरती जहाँ प्रेम की मदिरा,
पीती थीं वे नारियाँ
बैठी झरोखे में उन्नत प्रासाद के ?
बहता था स्नेह उन्माद नस नस में जहाँ
पृथ्वी की साधना के कमनीय अंगों में ?
ध्वनिमय ज्यों अन्धार
दूरगत सुकुमार,
प्रणयियों की प्रिय कथा
व्याप्त करती थी जहाँ
अम्बर का अन्तराल ?
आनन्द धारा बहती थी शत लहरों में
अधर के प्रान्तों से;
अतल हृदय से उठ
बाँधे युग बाहुओं के
लीन होते थे जहाँ अन्तहीनता में मधुर ?
अश्रु बह जाते थे
कामिनी के करों से
कमल के कोषों से प्रात की ओस ज्यों,
मिलन की तृष्णा से फूट उठते थे फिर,
रंग जाता नया राग ?
केश सुख भार रख मुख प्रिय स्कन्ध पर
भाव की भाषा से
कहती सुमुकारियाँ थीं कितनी ही बातें जहाँ
रातें विरामहीन करती हुईं ?
प्रिया की ग्रीवा कपोत बाहुओं से घेर
मुग्ध हो रहे थे जहाँ प्रिय मुख अनुरागमय
हिलते डुलते थे जहां

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

स्नेह की वायु से, प्रणय के लोक में
आलोक प्राप्त कर ?
रचे गये गीत,
गाये गये जहाँ कितने राग
देश के, विदेश के !
बहीं धाराएँ जहाँ कितनी किरणों को चूम !
कोमल निनाद भर
उठे वे कितने स्वर !
कितनी वे रातें
स्नेह की बातें रक्खे निज हृदय में
आज भी हैं मौन जहाँ !
यमुना की ध्वनि में
हैं गूँजती सुहाग गाथा,
सुनता है अन्धकार खड़ा चुपचाप जहाँ
आज वह फ़िरदौस
सुनसान है पड़ा।
शाही दीवान आम स्तब्ध है हो रहा,
दुपहर को, पार्श्व में,
उठता है झिल्लीरव,
बोलते हैं स्यार रात यमुना कछार में,
लीन हो गया है रव
शाही अंगनाओं का,
निस्तब्ध मीनार,
मौन हैं मकबरे
भय में आशा को जहाँ मिलते थे समाचार,
टपक पड़ता था जहाँ आँसुओं में सच्चा प्यार

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

१७

महादेवी वर्मा

ज़माने के करवट बदलते ही छायावादी-रहस्यवादी युग के उन्नायक कवि निराला, पन्त आदि के काव्य के स्वर भी बदले और वे छायालोक छोड़ जीवन की यथार्थ भूमि पर उतर चिंतन के कवि बन गए; पर इस बदलते युग में भी यदि कोई अपनी एकांतनिष्ठा में अचल अडिग रहकर अपनी कोमलतम भावनाओं से रहस्यवाद के क्षेत्र को आलोकित कर रहा है तो वह हैं वेदनामय सजल गीतों की गायिका सुश्री महादेवी वर्मा। दिव्य मिलन-वियोग के अक्षय सपनों को वाणी देने वाली इस कवयित्री के गीत हिंदी-काव्य-साहित्य की अमूल्य निधि हैं। ऐसी निधि पाकर कोई भी साहित्य गर्व कर सकता है।

सुश्री महादेवी वर्मा का जन्म फर्रुखाबाद में सं० १९६४ वि० सन् (१९०७) में हुआ था। पिता श्री० गोविन्द प्रसाद वर्मा एक कर्मनिष्ठ दार्शनिक व्यक्ति थे और कालेज में अध्यापन-कार्य करते थे। माता हेमरानी देवी एक भक्त और भावुक नारी थीं। इन्हीं के स्नेहाञ्चल की छाया में पलकर महादेवी की प्रवृत्ति काव्योन्मुखी हुई। ग्यारह वर्ष की छोटी-सी अवस्था में इनका विवाह डा० स्परूप नारायण वर्मा के साथ हो गया और ससुराल में पहुँचते ही इनकी पढ़ाई बन्द हो गई। पर बाद में श्वसुर की मृत्यु के पश्चात् इन्होंने फिर अध्ययन प्रारम्भ किया और संस्कृत लेकर एम० ए० किया। इस समय ये प्रयाग-महिला-विद्यापीठ की प्रिन्सिपल हैं और हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवियों में इनकी गणना होती है। 'नीरजा' पर पाँच सौ का सेकसरिया-पुरस्कार और 'यामा' पर बारह सौ का मंगला प्रसाद-पारितोषिक प्राप्त कर चुकीं हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नीहार, रश्मि, नीरजा, सान्ध्यगीत, यामा, दीपशिखा—इन कविता संग्रहों के अतिरिक्त महादेवीजी का निबन्ध संग्रह 'शृंखला की कड़ियाँ' और संस्मरण 'अतीत के चल-चित्र' नाम से प्रकाशित हो चुके हैं। महादेवीजी की काव्य-प्रतिभा विकासोन्मुख है। हिंदी-साहित्य अभी उनसे बहुत कुछ पाने की आशा कर सकता है।

महादेवीजी का भाव-क्षेत्र सीमित है। उनके गीतों में सर्वत्र एक ही भावना व्याप्त है और वह है उस अव्यक्त और असीम के प्रति प्रेमाराधन, जिसे पाने के लिए सारी सृष्टि अभिसार कर रही है, जो प्रकृति के एक-एक कण में व्याप्त है पर जो बन्धन में नहीं आता। अपने मन-मन्दिर में वे प्रेम-भाव से सदा ही उस अगोचर प्रियतम के लिए प्रेम की आरती उतारती हैं, जिसकी अलौकिक छटा से विश्व का अणु-अणु आलोकित है। उनकी विरह-भावना माधुर्यपूर्ण है; उनकी रहस्यानुभूति में प्रगाढ़ता है। रहस्यवादी कवि की आत्मा विश्वात्मा से मिलन के लिए व्याकुल रहती है, उसे क्षण भर चैन नहीं। इस वेदना की व्यञ्जना कवियित्री ने अनेक प्रकार से की है, जो बहुत ही मार्मिक बन पड़ी है। अपने उस अलौकिक प्रियतम की राह को आलोकित करने के लिए वे अपने प्राणों का दीपक जलाती हैं—

'मधुर-मधुर मेरे दीपक जल !
युग-युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल,
प्रियतम का पथ आलोकित कर !'

वह अगोचर, अरूप प्रियतम स्वयं उनके हृदय में छिपा हुआ है जिससे वह प्रश्नों की झड़ी लगा देती हैं—

कौन तुम मेरे हृदय में,
कौन मेरी कसक में नित मधुरता भरता अलक्षित ?
कौन प्यासे लोचनों में घुमड़ गिर झरता अपरिचित ?
स्वर्ण स्वप्नों का चितेरा नींद के सूने निलय में !

महादेवी की वेदना प्रसूत रचनाओं में वियोग-शृंगार की भावना

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पल्लवित हुई है। उनकी प्रेम-भावना में एक अनन्त कसक है। प्रिय की दी हुई होने के कारण यह कसक मधुर है और वह उसे सुरक्षित रखना चाहती हैं—

'तुमको पीड़ा में ढूँढ़ा, तुममें ढूढ़ूँगी पीड़ा।'

महादेवीजी के प्रकृति-चित्रण में भी रहस्यवादी-भावना ही प्रधान बन गई है। स्वतन्त्र-चित्रण उनमें नहीं मिलेगा क्योंकि समस्त सृष्टि उसी दिव्य-प्रियतम की छवि से छविमान है। उनके चित्रण में प्रकृति अपनी जड़ता को छोड़ सजीव हो उठी है।

महादेवी की भाषा मधुर, संस्कृत-पदावली से युक्त है। लाक्षणिक प्रयोगों से काव्य-सौन्दर्य द्विगुणित हो उठा है। प्रतीकात्मक-पद्धति का भी सहारा उन्होंने लिया है। रहस्यानुभूति की सम्यक् अभिव्यक्ति के लिए कवि की काव्य-कला अत्यन्त उत्कृष्ट होनी चाहिए। उसको थोड़े से शब्दों में बहुत-कुछ कह देना होता है, इस व्यक्तिगत अनुभूति को शब्दों का परिधान देकर खड़ा कर देना बड़ा कठिन कार्य होता है। इसीलिए अधिकांश रहस्यवादी कवि असफल रहते हैं पर महादेवी जी अपनी इस अनुभूति को काव्य का मनोरम रूप देने में पूरी तरह सफल हुई हैं। खड़ी बोली को काव्योचित रूप देने में महादेवी जी का भी बहुत बड़ा हाथ रहा है। वह नए छन्दों और नई लयों की प्रवर्त्तिका हैं।

महादेवी जी एक अत्यन्त कुशल चित्रकर्त्री हैं। उनके गीतों में काव्य, संगीत और चित्र की जैसी मनोरम त्रिवेणी प्रवाहित हुई है वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। आधुनिक युग में महादेवी जी की रहस्यवादी रचनाएँ सर्वोत्कृष्ट हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

महादेवी वर्मा

जो तुम आ जाते एक बार।
कितनी करुणा कितने सँदेश
पथ में बिछ जाते बन पराग,
गाता प्राणों का तार तार
अनुराग भरा उन्माद राग;
आँसू लेते वे पद पखार।

हँस उठते पल में आर्द्र नयन
धुल जाता ओठों से विषाद,
छा जाता जीवन में बसन्त
लुट जाता चिर संचित विराग;
आंखें देतीं सर्वस्व वार।

निश्वासों का नीड़ निशा का
बन जाता जब शयनागार,
लुट जाते अभिराम छिन्न
मुक्तावलियों के वन्दनवार,
तब बुझते तारों के नीरव नयनों का यह हाहाकार,
आँसू से लिख जाता है कितना अस्थिर है संसार।
हँस देता जब प्रात सुनहरे
अंचल में बिखरा रोली,
लहरों की बिछलन पर जब
मचलीं पड़तीं किरणें भोली,
तब कलियाँ चुपचाप उठाकर पल्लव का घूँघट सुकुमार,
छलकी पलकों से कहती हैं कितना मादक है संसार।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

स्वप्न लोक के फूलों के कर
अपने जीवन का निर्माण,
अमर हमारा राज्य सोचते
हैं जब मेरे पागल प्राण,
आकर जब अज्ञात देश से जाने कैसी मृदु झंकार,
गा जाती है करुण स्वरों में कितना पागल है संसार।

देकर सौरभ दान पवन से
कहते जब मरझाये फूल
जिसके पथ में बिछे वही
क्यों भरता इन आँखों में धूल?
अब इनमें क्या सार मधुर जब गाती भौंरों की गुंजार
मर्मर का रोदन कहता है कितना निष्ठुर है संसार।

स्वर्ण वर्ण से दिन लिख जाता
जब अपने यौवन की हार,
गोधूली नभ के आँगन में
देती अगणित दीपक बार,
हँसकर तब उस पार तिमिर का कहता बढ़ बढ़ पारावार
बीते युग पर बना हुआ है अब तक मतवाला संसार।

इन आँखों ने देखी न राह कहीं,
इन्हें धो गया नेह का नीर नहीं,
करती मिट जाने की साध कभी,
इन प्राणों को मूक अधीर नहीं;
अलि छोड़ी न जीवन की तरिणी,
उस सागर में जहाँ तीर नहीं।
कभी देखा नहीं वह देश जहाँ,
प्रिय से कम मादक पीर नहीं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जिसको मरुभूमि समुद्र हुआ,
उस मेघव्रती की प्रतीति नहीं;
जो हुआ जल दीपकमय उससे,
कभी पूछी निवाह की रीति नहीं;
मतवाले चकोर से सीखी कभी,
उस प्रेम के राज्य की नीति नहीं;
तू अकिंचन भिक्षुक है मधु का,
अलि तृप्ति कहाँ जब प्रीति नहीं।

गीत

मधुर मधुर मेरे दीपक जल।
युग युग प्रति दिन प्रतिक्षण प्रतिपल।
प्रियतम का पथ आलोकित कर।
सौरभ फैला विपुल धूप बन,
मृदुल मोम सा घुल रे मृदु तन;
दे प्रकाश का सिन्धु अपरिमित,
तेरे जीवन का अणु गल गल।
पुलक पुलक मेरे दीपक जल।
सारे शीतल कोमल नूतन,
माँग रहे तुझ से ज्वाला कण;
विश्व शलभ सिर धुन कहता मैं
हाय न जल पाया तुझ में मिल।
सिहर सिहर मेरे दीपक जल।
जलते नभ में देख असंख्यक,
स्नेहहीन नित कितने दीपक,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जलमय सागर का उर जलता,
विद्युत ले घिरता है बादल।
विहँस विहँस मेरे दीपक जल।

द्रुम के अंग हरित कोमलतम,
ज्वाला को करते हृदयंगम,
वसुधा के जड़ अन्तर में भी,
बन्दी है तापों की हलचल।
बिखर बिखर मेरे दीपक जल।
मेरी निश्वासों से द्रुततर,
सुभग न तू बुझने का भय कर
मैं अञ्चल की ओट किए हूँ
सहज सहज मेरे दीपक जल!

सीमा ही लघुता का बन्धन,
है अनादि तू मत घड़ियाँ गिन
मैं दृग के अक्षय कोषों से
तुममें भरती हूँ आँसू जल;
सजल सजल मेरे दीपक जल!

तम असीम तेरा प्रकाश चिर
खेलेंगे नव खेल निरन्तर
तम के अणु अणु में विद्युत-सा
अमिट चित्र अङ्कित करता चल!
सरल सरल मेरे दीपक जल!

तू जल जल जितना होता क्षय
वह समीप आता छलनामय,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मधुर मिलन में मिल जाता तू
उसकी उज्ज्वल स्मित में घुल-मिल।
मदिर मदिर मेरे दीपक जल!
प्रियतम का पथ आलोकित कर।

गीत

मैं नीरभरी दुख की बदली।
स्पन्दन में चिर निस्पन्दन बसा,
क्रन्दन में आहत विश्व हँसा,
नयनों में दीपक से जलते
पलकों में निर्झरिणी मचली
मेरा पग पग संगीतभरा,
श्वासों से स्वप्न पराग झरा,
नभ के नव रँग बुनते दुकूल,
छाया में मलय बयार पली!
मैं क्षितिज भृकुटि पर घिर धूमिल
चिन्ता का भार बनी अविरल,
रज कण पर जल कण हो बरसी
नवजीवन अंकुर बन निकली।
पथ को न मलिन करता आना
पद चिन्ह न दे जाता जाना,
सुधि मेरे आगम की जग में
सुख की सिहरन हो अन्त खिली।
विस्तृत नभ का कोई कोना,
मेरा न कभी अपना होना,
परिचय इतना इतिहास यही
उमड़ी कल थी मिट आज चली।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

धीरे धीरे उतर क्षितिज से
आ वसन्त-रजनी !
तारकमय नव वेणीबन्धन;
शीशफूल कर शशि का नूतन;
रश्मिवलय सित घन-अवगुंठन;
मुक्ताहल अभिराम बिछा दे
चितवन से अपनी।
पुलकती आ वसन्त-रजनी।

मर्मर की सुमधुर नूपुरध्वनि;
अलि-गुंजित पद्मों की किंकिणि;
भर पदगति में अलस तरंगिणि;
तरल रजत की धार बहा दे
मृदु स्मित से सजनी !
विहँसती आ वसन्त-रजनी !

पुलकित स्वप्नों की रोमावलि;
करमें हो स्मृतियों की अंजलि;
मलयानिल का चल दुकूल अलि।
घिर छाया सी श्याम, विश्व को
आ अभिसार बनी !
सकुचती आ वसन्त-रजनी !

सिहर सिहर उठता सरिता-उर;
खुल खुल पड़ते सुमन-सुधाभर;
मचल मचल जाते पल फिर फिर;
सुन प्रिय की पदचाप हो गई
पुलकित यह अपनी !
सिहरती आ वसन्त-रजनी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जब यह दीप थके तब आना।
यह चंचल सपने भोले हैं,
दृगजल पर पाले मैंने मृदु
पलकों पर तोले हैं,
दे सौरभ से पंख इन्हें सब नयनों में पहुँचाना।
साधें करुणा अंक ढली हैं,
सान्ध्य गगन सी रंगमयी हैं,
पावस की सजला बदली हैं,
विद्युत के दे चरण इन्हें उर उर की राह बताना।
यह उड़ते क्षण पुलकभरे हैं,
सुधि से सुरभित स्नेहधुले,
ज्वाला के चुम्बन से निखरे हैं,
दे तारों के प्राण इन्हीं से सूने श्वास बसाना।
यह स्पन्दन हैं अंक व्यथा के,
चिर उज्ज्वल अक्षर जीवन की
बिखरी विस्मृत क्षार कथा के,
कण का चल इतिहास इन्हीं से लिख लिख अजर बनाना।
लौ ने वर्ती को जाना है,
वर्ती ने यह स्नेह, स्नेह ने
रज का अंचल पहचाना है,
चिर बन्धन में बाँध इन्हें घुलने का वर दे जाना।

यह मंदिर का दीप इसे नीरव जलने दो।
रजत शंख घड़ियाल स्वर्ण वंशी वीणा स्वर,
गये आरती बेला को शत शत लय से भर,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जब था कलकण्ठों का मेला,
विहँसे उपल तिमिर था खेला,
अब मन्दिर में इष्ट अकेला,

इसे अजिर का शून्य जलाने को गलने दो।

चरणों से चिन्हित अलिन्द की भूमि सुनहली
प्रणत शिरों के अंक लिए चन्दन की दहली,

झरे सुमन बिखरे अक्षत सित,
धूप अर्घ्य नैवेद्य अपरिमित,
तम में सब होंगे अन्तर्हित,

सबकी अर्चित कथा इसी लौ में पलने दो।

पलके मनके फेर पुजारी विश्व सो गया,
प्रतिध्वनि का इतिहास प्रस्तरों बीच खो गया,

साँसों की समाधि सा जीवन,
मसि सागर सा पंथ गया बन,
रुका मुखर कण कण का स्पन्दन,

इस ज्वाला में प्राण रूप फिर से ढलने दो।

झंझा है दिग्भ्रान्त रात की मूर्च्छा गहरी,
आज पुजारी बने, ज्योति का यह लघु प्रहरी,

जब तक लौटे दिन की हलचल,
तब तक यह जागेगा प्रतिपल,
रेखाओं में भर आया जल,

दूत साँझ का इसे प्रभाती तक चलने दो।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

१८

कविवर रामधारीसिंह 'दिनकर'

नवयुग की आवश्यकताओं को अनुभव कर काव्य को छायावाद-रहस्यवाद के स्वर्णपिंजर से निकाल जन-जीवन के सुख-दुःख के बीच प्रतिष्ठित करने के लिए जिन कवियों के स्वर मुखरित हुए, उनमें दिनकर का प्रमुख स्थान है। प्रगति के उठते हुए स्वरों को जब साम्यवादी विचारधारा से आक्रान्त करने के प्रयत्न किए गए, तो साहित्य-क्षेत्र पर राजनीति के प्रभुत्व का सबसे तीव्र विरोध भी दिनकर ने ही किया। कृषकों, मिल मजदूरों और श्रमिकों के प्रति कवि की गहरी सहानुभूति है पर 'साहित्य राजनीति का अनुचर नहीं वरन् उससे भिन्न एक स्वतंत्र देवता है।' वह काव्य को मजदूर या निम्नवर्गों और राजनीति की सीमा में जकड़ कर रखने के लिए तैयार नहीं और न वह किसी भी वाद के नाम पर अपनी संस्कृति का विनाश होते देखना चाहते है।

श्री० रामधारी सिंह 'दिनकर' का जन्म संवत् १९६५ वि० में हुआ था। वह बिहार में मुँगेर जिले के सिमरिया ग्राम के रहने वाले हैं। पटना विश्वविद्यालय से उन्होंने बी० ए० आनर्स की परीक्षा पास की है। रेणुका, विद्रोह, शिखा, रसवन्ती, द्वन्द्वगीत, सामधेनी, हुँकार, कलिंग-विजय, बापू आदि दिनकर जी की प्रकाशित काव्य-पुस्तकें हैं। 'कुरुक्षेत्र' इनका प्रबन्ध-काव्य है जो बहुत ही लोकप्रिय हुआ है। दिनकर की विकासोन्मुखी काव्य-प्रतिभा अभी साहित्य को बहुत कुछ देगी—ऐसी आशा है। प्रारम्भिक रचनाओं में हमें छायावाद का पूर्ण उन्मेष मिलता है पर 'सामधेनी' में कवि का स्वर बदल गया है। उनमें विचारों और भावों का नया उन्मेष है। उनपर युद्ध की विभीषिका की छाया स्पष्ट है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

'कुरुक्षेत्र' में कवि अपने युग की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण समस्या को हल करने चला है। युद्ध या शांति—मानव किस रास्ते पर चलकर प्रगति कर सकता है? भूमिका में ही कवि ने यह व्यापक प्रश्न इस रूप में उपस्थित किया है—

"पापी कौन? मनुज से उसका न्याय चुराने वाला?
या कि खोजते न्याय विघ्न का शीश उड़ाने वाला?"

साम्राज्यवाद की कठोरता का जवाब देने के लिए उसने गांधीवादी अहिंसा को असमर्थ समझा है। क्रूरता और हिंसा के युग से मोर्चा लेने के लिए युधिष्ठिर (गांधी) के सिद्धान्त अपनाना असफलता का पल्ला पकड़ना होगा और इसीलिए 'हिमालय के प्रति' कविता में कवि कह उठता है:—

'रे रोक युधिष्ठिर को न यहाँ, जाने दे उनको स्वर्ग धीर,
पर फिरा हमें गाण्डीव, गदा, लौटा दे अर्जुन भीम वीर।'

आन्तरिक द्वन्द्व से व्यथित युधिष्ठिर को भीष्म अनेक प्रकार से समझाते हैं। उनके अनुसार कोई भी कर्म स्वत: पाप-पुण्य नहीं, कर्ता के हृदय की भावना ही मुख्य है। त्याग, तप आदि से मन को जीता जा सकता है, पर जहाँ पाशविक शक्ति का सामना हो? उससे व्यक्ति को प्रभावित किया जा सकता है पर समुदाय के लिए तो दूसरे ही अस्त्र चाहिएँ—

'कौन केवल आत्मबल से जूझकर, जीत सकता देह का संग्राम है,
पाशविकता खडग जो लेती उठा, आत्मबल का एक वश चलता नहीं।
योगियों की शक्ति से संसार में, हारता लेकिन नहीं समुदाय है।'

और अंत में कवि ने हिंसा और अहिंसा के बीच का एक नया मार्ग निकाल लिया है। यह समझौता ही समस्या का समाधान है।

कवि की जनतंत्र-भावना भारतीयता से अनुप्राणित है, उसका स्वरूप रूस के साम्यवादी आधार पर अवलम्बित नहीं। 'प्रगतिवाद' को 'साम्यवाद' का साहित्यक पर्याय मानने वालों मे कवि सहमत

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नहीं। 'रसवन्ती' की भूमिका में कवि ने यह बात स्पष्ट कर दी है—'प्रगति शब्द में जो नया अर्थ ठूँसा गया है, उसके फलस्वरूप हल और फावड़े कविता का सर्वोच्च विषय सिद्ध किए जा रहे हैं और वातावरण ऐसा बनता जा रहा है कि जीवन की गहराइयों में उतरने वाले कवि सिर उठाकर नहीं चल सकें।'

दिनकर के काव्य में भाव-गम्भीर्य है। उनकी भाषा में तत्सम, तद्भव और उर्दू के भी शब्दों का प्रयोग हुआ है। उनकी भाषा सजीव, प्रवाहयुक्त और ओजपूर्ण है, उसमें हृदय में स्फूर्ति उत्पन्न करने की शक्ति है और मार्मिक भावों को सफल अभिव्यक्ति हुई है।

'दिनकर जी' की कविता राष्ट्रीय-भावना और सांस्कृतिक चेतना से अनुप्राणित है। हिंदी कविता उन्हें पाकर गौरवान्वित हुई है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कविवर रामधारी सिंह "दिनकर"

हिमालय के प्रति

मेरे नगपति ! मेरे विशाल !
साकार, दिव्य, गौरव विराट
पौरुष के पूंजीभूत ज्वाल
मेरी जननी के हिम किरीट
मेरे भारत के दिव्य भाल
मेरे नगपति ! मेरे विशाल
युग युग अजेय, निर्बन्ध, मुक्त
युग युग गर्वोन्नत, नित महान
निस्सीम व्योम में तान रहा
युग से किस महिमा का वितान

कैसी अखण्ड यह चिर समाधि
यतिवर ! कैसा यह अधर ध्यान
तू महाशून्य में खोज रहा
किस जटिल समस्या का निदान
उलझन का कैसा विषम जाल
मेरे नगपति ! मेरे विशाल !

ओ मौन तपस्या लीन यती
पल भर को तो कर दृगोन्मेष
रे ज्वालाओं से दग्ध विकल
है तड़प रहा पद पर स्वदेश

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सुख सिन्धु पंचनद, ब्रह्मपुत्र
गंगा, यमुना की अमिय धार
जिस पुण्यभूमि की ओर बही
तेरी विगलित करुणा उदार

जिसके द्वारों पर खड़ा क्रान्त
सीमापति ! तू ने की पुकार
पद दलित इसे करना पीछे
पहले ले मेरा सिर उतार

उस पुण्यभूमि पर आज तपी
रे आन पड़ा संकट कराल
व्याकुल तेरे सुत तड़प रहे
डस रहे चतुर्दिक् विविध व्याल

मेरे नगपति ! मेरे विशाल
कितनी मणियाँ लुट गईं ? मिटा
कितना मेरा वैभव अशेष
तू ध्यान मग्न ही रहा, इधर
वीरान हुआ प्यारा स्वदेश

कितनी द्रुपदा के बाल खुले
कितनी कलियों का अन्त हुआ
कह हृदय खोल चित्तौर ! यहाँ
कितने दिन ज्वाल वसन्त हुआ।

पूछे, सिकता कण से हिमपति
तेरा वह राजस्थान कहाँ
वन वन स्वतन्त्रता दीप लिए
फिरने वाला बलवान कहाँ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तू पूछ अवध से, राम कहाँ
वृन्दा बोलो ! घनश्याम कहाँ
ओ मगध ! कहाँ मेरे अशोक
वह चन्द्रगुप्त बलधाम कहाँ

पैरों पर ही है पड़ी हुई
मिथिला भिखारिणी सुकुमारी
तू पूछ, कहाँ उसने खोई
अपनी अनन्त निधियाँ सारी

री कपिलवस्तु ! यह बुद्धदेव
के वे मंगल उपदेश कहाँ
तिब्बत, इरान, जापान, चीन
तक गये हुए सन्देश कहाँ

वैशाली के भग्नावशेष से
पूछ लिच्छवी वंश कहाँ
ओ री उदास गंडकी ! बता
विद्यापति कवि के गान कहाँ

तू मौन त्याग कर पूछ आज
बंगाल, नवाबी ताज कहाँ
भारत का अन्तिम ज्योति नयन
मेरा प्यारा सीराज कहाँ ?

तू तरुण देश से पूछ अरे
गूँजा कैसा यह ध्वंस राग
अम्बुधि अन्तस्तल बीच छिपी
यह सुलग रही है कौन आग

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्राची के प्रांगण बीच देख
जल रहा स्वर्ण युग अग्निज्वाल
तू सिंहनाद कर जाग यती
मेरे नगपति ! मेरे विशाल

रे रोक युधिष्ठिर को न यहाँ
जाने दे उनको स्वर्ग धीर
पर फिरा हमें गांडीव, गदा
लौटा दे अर्जुन, भीम वीर

कह दे शंकर से आज करें
वे प्रलय नृत्य फिर एक वार
सारे भारत में गूँज उठे
हर हर बम का महोच्चार

ले अँगड़ाई उठ, हिले धरा
कर निज विराट स्वर में निनाद
तू शैलराट् ! हुंकार भरे
फट जाय कहाँ, भागे प्रमाद

तू मौन त्याग कर सिंहनाद
रे तपी ! आज तप का न काल
नवयुग शंखध्वनि जगा रही
तू जाग, जाग, मेरे विशाल

मेरी जननी के हिम किरीट
मेरे भारत के दिव्य भाल
नवयुग शंखध्वनि जगा रही
जागे नगपति ! जागे विशाल

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मनुज का श्रेय

यह मनुष्य,
जिसका गगन में जा रहा है यान,
काँपता जिसके करों को देखकर परमाणु।
खोल कर अपना हृदय गिरि सिन्धु, भू, आकाश,
हैं सुना जिसको चुके निज गुह्यतम इतिहास।
खुल गये परदे, रहा अब क्या यहाँ अज्ञेय?
किन्तु, नर को चाहिए नित विघ्न कुछ दुर्जेय,
सोचने को और करने को नया संघर्ष,
नव्य जय का क्षेत्र, पाने को नया उत्कर्ष।
पर धरा सुपरीक्षिता, विश्लिष्ट, स्वाद-विहीन,
यह पढ़ी पोथी न दे सकती प्रवेग नवीन;
एक लघु हस्तामलक यह भूमि-मंडल गोल,
मानवों ने पढ़ लिए सब पृष्ठ जिसके खोल।
किन्तु, नर-प्रज्ञा सदा गति शालिनी, उद्दाम,
ले नहीं सकती कहीं रुक एक पल विश्राम।
यह परीक्षित भूमि, यह पोथी पठित, प्राचीन,
सोचने को दे उसे अब बात कौन नवीन?
यह लघुग्रह भूमि-मंडल, व्योम यह संकीर्ण,
चाहिये नर को नया कुछ और जग विस्तीर्ण।
घुट रही नर-बुद्धि की है साँस;
चाहती वह कुछ बड़ा जग;कुछ बड़ा आकाश।
यह मनुज, जिसके लिए लघु हो रहा भूगोल,
अपर-ग्रह-जय की तृषा जिसमें उठी है बोल।
यह मनुज विज्ञान में निष्णात,
जो करेगा स्यात, मंगल और विधु से बात।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यह मनुज, ब्रह्माण्ड का सबसे सुरम्य प्रकाश,
कुछ छिपा सकते न जिससे भूमि या आकाश।
यह मनुज, जिसकी शिखा उद्दाम,
कर रहे जिसको चराचर भक्तियुक्त प्रणाम।
यह मनुज जो सृष्टि का शृङ्गार।
ज्ञान का, विज्ञान का, आलोक का आगार।
पर, सको सुन तो सुनो, मंगल-जगत के लोग!
तुम्हें छूने को रहा जो जीव कर उद्योग—
वह अभी पशु है; निरा पशु, हिंस्र रक्त-पिपासु,
बुद्धि उसकी दानवी है स्थूल की जिज्ञासु।
कड़कता उसमें किसी का जब कभी अभिमान,
फूँकने लगते सभी, हो मत्त, मृत्यु-विषाण।
यह मनुज ज्ञानी, शृगालों, कुक्कुरों से हीन—
हो, किया करता अनेकों क्रूर कर्म मलीन।
देह ही लड़ती नहीं, हैं जूझते मन प्राण,
साथ होने ध्वंस मय इसके कला विज्ञान।
इस मनुज के हाथ से विज्ञान के भी फूल,
वज्र हो कर छूटते शुभ धर्म अपना भूल।
यह मनुज, जो ज्ञान का आगार
यह मनुज, जो सृष्टि का शृंगार!
नाम सुन भुलो नहीं, सोचो विचारो कृत्य।
यह मनुज संहार-सेवी, वासना का भृत्य।
छद्म इसकी कल्पना, पाखण्ड इसका ज्ञान,
यह मनुष्य, मनुष्यता का घोर तम अपमान।
'व्योम से पाताल तक सब कुछ इसे है ज्ञेय'
पर, न यह परिचय मनुज का, यह न उसका श्रेय।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

श्रेय उसका, बुद्धि पर चैतन्य उर की जीत;
श्रेय मानव की असीमित मानवों से प्रीत;
एक नर से दूसरे के बीच का व्यवधान,
तोड़ दे जो, बस वही ज्ञानी, वही विद्वान्,
और मानव भी वही।
जो जीव बुद्धि अधीर
तोड़ता अणु ही, न इस व्याधान का प्राचीर;
वह नहीं मानव; मनुज से उच्च, लघु या भिन्न
चित्र-प्राणी है किसी अज्ञात ग्रह का छिन्न।
स्यात्, मंगल या शनिश्चर लोक का अवदान,
अजनवी करता सदा अपने ग्रहों का ध्यान।
रसवती भू के मनुज का श्रेय,
यह नहीं विज्ञान, विद्या-बुद्धि यह आग्नेय;
विश्व-दाहक, मृत्यु-वाहक, सृष्टि का संताप,
भ्रान्त पथ पर अन्ध बढ़ते ज्ञान का अभिशाप।
भ्रमित प्रज्ञा का कुतुक यह इन्द्रजाल विचित्र,
श्रेय मानव के न, आविष्कार ये अपवित्र।
सावधान मनुष्य, यदि विज्ञान है तलवार,
तो इसे दे फेंक, तज कर मोह, स्मृति के पार।
हो चुका है सिद्ध, है तू शिशु अभी अज्ञान;
फूल काँटों की तुझे कुछ भी नहीं पहचान।
खेल सकता तू नहीं ले हाथ में तलवार,
काट लेगा अंग, तीखी है बड़ी यह धार।
रसवती भू के मनुज का श्रेय,
यह नहीं विज्ञान कटु, आग्नेय।
श्रेय उसका, प्राण में बहती प्रणय की वायु,
मानवों के हेतु अर्पित मानवों की आयु।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

श्रेय उसका, आँसुओं की धार,
श्रेय उसका, भग्न वीणा की अधीर पुकार।
दिव्य भावों के जगत में जागरण का ज्ञान,
मानवों का श्रेय, आत्मा का किरण-अभियान।
यजन, अर्पण, आत्म सुख का त्याग,
श्रेय मानव का, तपस्या की दहकती आग।
बुद्धि-मंथन से विनिर्गत श्रेय वह नवनीत—
जो करे नर के हृदय को स्निग्ध, सौम्य, पुनीत।

श्रेय वह विज्ञान का वरदान,
हो सुलभ सबको सहज जिसका रुचिर अवदान।
श्रेय वह नर-बुद्धि का शिवरूप आविष्कार,
ढो सके जिससे प्रकृति सबके सुखों का भार।
मनुज के श्रम के अपव्यय की प्रथा रुक जाय,
सुख-समृद्धि-विधान में नर के, प्रकृति झुक जाय।
श्रेय होगा मनुज का समता-विधायक ज्ञान,
स्नेह-सिंचित-न्याय पर नव विश्व का निर्माण।
एक नर में अन्य का निःशंक, दृढ़ विश्वास,
धर्मदीप्त मनुष्य का उज्ज्वल नया इतिहास—
समर, शोषण, ह्रास की विरुदावली से हीन,
पृष्ठ जिसका एक भी होगा न दग्ध, मलीन।
मनुज का इतिहास जो होगा सुधामय कोष,
छलकता होगा सभी नर का जहाँ संतोष।

युद्ध की ज्वर-भीति से हो मुक्त,
जब कि होगी सत्य ही वसुधा सुधा से युक्त।
श्रेय होगा सुष्ठु विकसित मनुज का वह काल,
जब नहीं होगी धरा नर के रुधिर से लाल।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

श्रेय होगा धर्म का आलोक वह निर्बन्ध,
मनुज जोड़ेगा मनुज से जब उचित सम्बन्ध।
साम्य की वह रश्मि स्निग्ध, उदार,
कब खिलेगी, कब खिलेगी विश्व में भगवान्?
कब सुकोमल ज्योति से अभिषिक्त—
हो, सरस होंगे जली-सूखी रसा के प्राण?

गीत-अगीत

गीत, अगीत कौन सुन्दर है?

(१)

गाकर गीत विरह के तटिनी
वेगवती बहती जाती है,
दिल हलका कर लेने को
उपलों से कुछ कहती जाती है।
तट पर एक गुलाब सोचता—
"देते स्वर यदि मुझे विधाता,
अपने पतझड़ के सपनों का
मैं भी जग को गीत सुनाता।"
गा-गा कर बह रही निर्झरी,
पाटल मूक खड़ा तट पर है।
गीत, अगीत कौन सुन्दर है?

(२)

बैठा शुक उस घनी डाल पर
जो खोंते पर छाया देती,
पंख फुला नीचे खोंते में
शुकी बैठ है अंडे सेती।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गाता शुक जब किरण बसन्ती
छूती अंग पर्ण से छन कर,
किन्तु शुकी के गीत उमड़कर
रह जाते सनेह में सनकर।
गूँज रहा शुक का स्वर वन में,
फूला मग्न शुकी वन पर हैं।
गीत, अगीत कौन सुन्दर है ?

(३)

दो प्रेमी हैं यहाँ, एक जब
बड़े साँझ आल्हा गाता है,
पहला स्वर उसकी राधा को
घर से यहाँ खींच लाता है।
चोरी-चोरी खड़ी नीम की
छाया में छिपकर सुनती है,
"हुई न क्यों मैं कड़ी गीत की
विधना यों मन में गुनती है।"
वह गाता, पर किसी वेग से
फूल रहा इसका अन्तर है।
गीत, अगीत कौन सुन्दर है ?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

टिप्पणियाँ

कबीर

पृष्ठ ५—चौंसठि दीवा=चौंसठ कलाओं का अध्ययन कर, चौदह चंदा—चौदह विद्याओं का प्रकाश ग्रहण कर, चानिणो=प्रकाश, आँखड़ियाँ···पड़ी=आँखों के आगे अँधेरा छा गया। जीभड़ियाँ=जिह्वा, भावता=प्रिय, परभाति=प्रभात, समंद=समुद्र, आषिर=अक्षर।

पृष्ठ ६—कस्तूरी···घास=कस्तूरी का मृग उसकी सुगंधि के वास्तविक उद्गम स्थान का रहस्य जाने बिना इधर-उधर भटकता है। बीछुटे=बिछुड़े, आथव्यो=दिनमुँद गया, ऊभी=व्याकुल हुई, दुहागिनि=अभागिनी, मैमंता=मदमत्त, रूँखड़ा=पेड़, बूठा=बरसा, मुगताहल=मुक्त पुरुष,

पृष्ठ ७—तिनकावरि=तृणवत, आहेड़ी=अहेरी, दौं=दावग्नि, सायर=सागर।

पृष्ठ ८—भरनी=बाना, इंगला, पिंगला, सुषमना=ये तीनों शरीर की नाड़ियाँ हैं और इनका सम्बन्ध हठयोग से है।

पृष्ठ ९—आठ कँवल=शरीर में 'अष्ट कमल' आठ स्थानों का नाम है।

दस चरखा=इन्द्रियाँ

पाँच तत्त्व—अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी, आकाश। गुनतीनी=सत्त्व, रज, तम।

पृष्ठ १०—तत्त=तत्त्व, षटकर्म—

ओट टाटी=टट्टी की ओट। फूँके कान=कान फूँकना, मंत्र देना। पतियाना=विश्वास करना। डिंग=(यहाँ) ध्यान,

पृष्ठ ११—औलिया=धर्म गुरु, मुरीद=शिष्य

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जायसी

पृष्ठ १६—पथहेरा=रस्ता देखती है, नागर=नायक, बाँवन-कर=बामन रूप (विष्णु द्वारा वामन रूप में बलि के छले जाने की कथा प्रसिद्ध है)। करन=राजा कर्ण, छंदू=छाल, विप्र=रूप···इन्दू=कृष्ण ने महाभारत के समय ब्राह्मण-रूप धारण कर दानवीर कर्ण से कवच-कुण्डल माँग लिए थे, जिनके रहते कर्ण को कोई नहीं मार सकता था। अपसवा=चल दिया, लेइगा···गोमी···गारुड़ विष्णु वाहन है, जायसी ने उसे कृष्ण का भी वाहन मान लिया है। नारी=नाड़ी, चोला=शरीर, पहर···बोला=इतनी अस्पष्ट आवाज निकलती है कि अर्थ समझने में पहरों लगते हैं, हंस=हँस या जीव, पाट महादेव=पट्ट महादेवी, पटरानी, मेंरावा=मिलाप, टेकु पियास=प्यास सह, बाँधुमन थीती=मन को स्थिर कर।

पृष्ठ १७—जिनि=मत, पलुहँत=पल्लवित होते हैं, गाजा=गरजा, धूम=धूमिल रंग के, धौरे=सफेद, ओनई=झुकी, लेई लागि=खेतों में लेवा लगा, खेत पानी से भर गए, गारौ=गौरव, मेह=मेघ, भरनिपरी=भरनी लगी, सरेखा=चतुर, भँभीरी=पतिंगा विशेष, भरौं=बिताऊँ, तरासा=(त्रास) डराता है।

पृष्ठ १८—मघा=(नक्षत्र), ओरी=छप्पर का किनारा, पुरवा=एक नक्षत्र, लटा=दुर्बल हुआ, पलु है=हरी-भरी हो जाए, चित्रा=एक नक्षत्र; तुरय=घोड़ा, पलानि=जीन कसकर, छाय=छाव, गाजहु=गरजो, सदूर=शार्दूल, झूमक=गीत (विशेष), अंग मोरी=इठला कर, झुरावौं=सूखती हूँ, सबति=सौत, तिउहार=त्यौहार, सीऊ=शीत,

पृष्ठ १६—सोधनि···लागि=अर्थात् वही धुँआँ लगने के कारण भौंरे और कौवे काले हो गए हैं, लंका-दिसि=दक्षिण, चाँपाजाइ=दबा जाता है, हौं···कोकिला=जलकर काली हो गई, सयान=बाज, गरा-गला ररिमुई=रट कर मर गई, जड़ काला=जाड़े का मौसम,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

माहा = माघ में, महवट = (माहौट) माघ की झड़ी, भीरु = भीर, सर = बाण, झोला मारना = वात के प्रकोप से अंग सुन्न हो जाना, पटोरा = रेशमी वस्त्र, डोरा = डोरे के समान क्षीण, तिनउर = तिनके का समूह, झोल = राख, ओनंत = झुकी हुई ।

पृष्ठ २०—लगौं निहोर = यह शरीर तुम्हारे निहोरे लग (काम आ) जाय, पंचम = राग, कोकिल का स्वर, सगरौं = सारे, बूड़ि उठे··· पाता = नए पत्तों की ललाई मानों रक्त में भीगने के कारण है, बिरिनिपरेवा = गिरहबाज कबूतर, नारि = नाड़ी, स्त्री, हिवंचल ताका = उत्तरायण हुआ, बिरह···हाँका = विरहा गिनने सीधे मेरी ओर रथ हाँका, दँवगरा = वर्षा के आरम्भ की झड़ी, मेरवउ एका = जो दरारें पड़ गई हैं, उन्हें मिलाकर एक कर दो, लुबार = लू, पलंका = पलँग ।

पृष्ठ २१—सहस···साँसा = एक-एक साँस सहस्त्रों दुखों से भरा था, तिल···परिजाई = तिल-तिल समय वर्ष की तरह बीतता है, सरोई = बीतता है, घुँघुची = गुँजा, बिंब = बिम्बा फल ।

सूरदास

पृष्ठ २६—अनत = अन्यत्र, खनावै = खुदवाता है, अम्बुज = कमल, छेरी = बकरी, नारि = नाली, बधिक = कसाई, सगरो = सारा ।

पृष्ठ २७—फरकावै = हिलाते हैं, सैन = इशारे, नँद भामिनि = यशोदा, तुतरे···झरै = कब मुँह से तुतली वाणी निकलेगी, अँधवाइ = अँधड़, रेनु-तनुमंडित = धूलि शरीर में लिपटी हुई है ।

पृष्ठ २८—खिजत = चिढ़ जाते हैं, खीझै = (कभी नहीं) डाँटती, चबाई = पीठ पीछे बुराई करने वाला,

पृष्ठ २९—बिरंचि = ब्रह्मा, पटतर = बराबरी नहीं कर सकते, सैन = इशारा (नेत्रों की चंचलता) कनौड़े = कृतज्ञ, नारि = गर्दन ।

पृष्ठ ३०—बिलगु = बुरा, सुफलक सुत = अक्रूर, माट = घड़ा,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पखारे=नहला दिया, सौंई=सौंगन्ध, गाँसी=झूठ, छुड़े=छोड़े (नहीं जाते)।

पृष्ठ ३१—बासर=दिन, तारे=नेत्रों की पुतलियाँ, ऊरध=ऊपर की ओर बदन···मारे=वर्षा में भीग जाने के डर से वचन-खाग मुख-सदन से बाहर नहीं निकलते, बोला नहीं जाता, ठाले=बेकार घात=खतरा, मुकुलात=बंद हो जाते हैं।

पृष्ठ ३२—मोहे···ढरिवो=चन्द्रमा के रथ के मृग वीणा की ध्वनि से मोहित होकर खड़े हो गए हैं फलत: रात स्थिर हो गई है। सचु=सुख, तँवारो=अंधकार छा गया, ब्याल=साँप, गहवर=गह्वर, गुफा, जलसुत=कमल, संपुट=बंधन (बंद)।

पृष्ठ ३३—जा दिन···जै हैं=प्राण-पखेरू के उड़ते ही इस शरीर रूपी वृक्ष की सारी शोभा लुप्त हो जाएगी।

———

तुलसीदास

पृष्ठ ३८—सुररूख=कल्पवृक्ष, सोपान=सीढ़ियाँ, आराम=बाग, कह···हरष कर···अपनी प्रसन्नता का कारण बताओ, गिरा···बिनुबानी=वाणी (जो कह सकती है उस) के नेत्र नहीं और नेत्रों (जो देख सकते हैं उन) के पास वाणी नहीं अत: उनके सौन्दर्य का बर्णन कैसे किया जाए।

पृष्ठ ३९—काली=कल, मनसा=विचार, निमि···दृगंचल=पलकों ने झपकना बंद कर दिया। जुठारी=जूठाकर दिया है। सब उपमाएँ पुरानी हो गई हैं, छोभा=क्षोभ, प्रतीति=विश्वास, जिन्ह···पीठी=रण में वह कभी पीठ नहीं दिखाते, मंगन···नाहीं=याचकों को कभी 'नहीं' नहीं सुननी पड़ती,

पृष्ठ ४०—मन चीता=मन चाहे, जनु···श्रेनी=मानों वहीं श्वेत कमल बिखर जाते हैं, भोरी=(अपने आपको) भूल गईं, लोचन मग···सयानी=नेत्रों के रास्ते से राम को हृदय में प्रतिष्ठित

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

और फिर रास्ता बंद कर दिया (तात्पर्य यह है कि सदा के लिए हृदय में बसा लिया), त्रिलगाइ्=छिन्न करके, सींव=सीमा, पनु=प्रण गहरु=विलम्ब, बिरियाँ=समय।

पृष्ठ ४१—मिस=बहाने, स्यंदन=घोड़ा, सौरज=शौर्य, कोदंडा=धनुष, त्रोन=तरकस, सिलीमुख=बाण,

पृष्ठ ४२—बिरुज=बिना रोग, नभगेस=गरुड़, मेखला=करधनी, खगेस=गरुड़, पंचानन=सिंह।

पृष्ठ ४३—श्री खण्ड=चंदन, अमरष=अमर्ष, क्रोध, अमानी=निरभिमान, मयत्री=मित्रता, उभय=दोनों, हरहाई=जंगली गाय, परीनिधि=पड़ी हुई सम्पत्ति।

पृष्ठ ४४—मोरा=मोर, पहुनाई=आतिथ्य, बटाऊ=राहगीर, जलच्वै=जल चूने लगा, पसेउ=पसीना अरु ··डाढ़े=तप्त भूमि में चलने के कारण जले हुए पैरों का धो देंगे।

पृष्ठ ४५—मैन=कामदेव, निषंग=तरकस, रंचक=थोड़ा-सा, पयादेहि=पैदल ही, कान किया है=माना है।

पृष्ठ ४६—सरसीरुह=कमल, सोन=शोण, रक्तिम, कुरंग=हिरण, सिलीमुख पंच··नायक है=मानों पंच बाण धारण करने वाले काम देव हैं। तमीचर=राक्षस।

पृष्ठ ४७—निसान=बाजे, बालधी=पूँछ, रसना=जीभ, बीथिका=बगीची, कृसानु=अग्नि, जातुधान=राक्षस, प्रजारी=आग लगा दी, धीय=पुत्री, बार=बच्चे, हय=घोड़ा, तिलोकिये=त्रिलोक में।

पृष्ठ ४८—सतराह=क्रुद्ध हो जाना, अजिर=आँगन, तामरस=कमल, रुज=रोग, पनहियाँ=जूतियाँ, सकारे=प्रात:काल, जोपै··है हौं=जो माता कौशल्या भी मुझे राम बनवास का दोषी मानती होंगी।

पृष्ठ ४९—सुचि=शुद्ध, बिसिषन=तीरों से, सृंगनि=चोटियों

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पर, अम्भोज = कमल, बग = बगुले, बिहरि बारिधि = समुद्र को चीरता हुआ।

पृष्ठ ५०—मंदाकिनी = गंगा, परुष = कठोर, शून्य……चितेरे=अशरीरी चित्रकार ने बिना ही रंग के शून्य के आधार पर चित्र बनाया है। (यह है इस क्षणिक संसार की परिभाषा), मरइ भीति=मरण का डर है।

पृष्ठ ५१—मकर=मगरमच्छ (माया), (इस संसार में भी जो भी आता है माया के फंदे में पड़ जाता है, स्वाति सलिल=स्वाति बूँद, माँगनहिं=याचक, दादुर=मेंढक।

मीराबाई

पृष्ठ ५५—जोई = खोज लिया, छोई=छाछ, व्यर्थ की वस्तु, पौढूँगी=लेटना, राचूँगी = रँग जाना, पचरँग=पंचतत्त्व, झिरमिट

पृष्ठ ५६—कुलनासी=कुल की मर्यादा नष्ट करने वाली, बाण= बान, कल=चैन, भयो……रैन = रात छः महीने के बराबर हो गई है।

पृष्ठ ५७—बलम = स्नेही, रमइयो=राम (कृष्ण), धान=अन्न, आवड़े = आती है, झूरताँ = दुखी, ऊबी = थक गई, बाटड़ियाँ=बाट।

पृष्ठ ५८—फाँसड़ियाँ=फाँस, नाभि……साँसड़ियाँ=साँस भी ठीक तरह नहीं आती। पासड़ियाँ = पास, लूण = नमक, सोवनी=सोने की, गुम्भाती—

पृष्ठ ५९—कुलरा = कुटुम्ब, मदमातो = मस्त, दस्त=हाथ, अमोलक = अमूल्य, खेवटिया=खेवन हार।

पृष्ठ ६०—मघवा = इन्द्र, सीर=सिर, मीरा……गाय=इस पद में मीरा के जीवन की घटनाएं वर्णित हैं।

केशवदास

पृष्ठ ६६—करहाट—अनै = से = अनिष्ट विधायक (राक्षस), अच्छ=अक्षय कुमार। दूखन = दूषण, दुरबुद्धि……जानियै=तेरी दुर्बुद्धि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ही तेरी मृत्यु का कारण होगी।

पृष्ठ ६७—साधियै ··परलोक को=लोक परलोक को सुधार लो। सींव=सीमा, भृगुनंदन=परशुराम, है=हयराज=सहस्रबाहु अर्जुन, धनुरेख=लक्ष्मण द्वारा खींची गई धनुष की रेखा, बाट करी=रास्ता बना लिया, तेलहु=तूलहु=तेल डाल और रुई बाँधकर जलाने पर भी।

पृष्ठ ६८—बादिहि=व्यर्थ ही, प्रसस्ति=प्रशंसा, चेटक=कौतुक, बपुरा=बिचारा, बपुमारै=पिता का वध करने वाले, बिलगु=बुरा, उरसि=मन में।

पृष्ठ ५६—नराच=लोहे के फल वाले बाण, सिवा=लोमड़ी, सूर=सूर्य, छपानाथ=चन्द्र, व्योम=प्रकाश, बित्त=वित्त, अनादि।

पृष्ठ ७०—अन्तकलोक=परलोक, नरक, रती=कौ=तनिक भी, हरगिरि=कैलाश, बाघ=मगर=जादू का खेल, रिखिनारि=ऋषि=नारी, अहिल्या, अमानुसी···करौं=भूमि को वानर और मनुष्य से विहीन कर दूँगा,

---

बिहारी

पृष्ठ ७६—झाईं=छाया, स्याम=काला, कृष्ण, वृषभानुजा=राधिका, बृषभ की अनुजा, हलधर=बैल, बलदाऊ, कुबत=बुराई, त्रिभंगीलाल=कृष्ण, सबी=चित्र, भये···कूर=किस-किसने अपनी हृदय-हीनता का परिचय नहीं दिया,

पृष्ठ ७७-बढ़ायें=बुझा देने पर भी, पायंदाज=पैर पोंछने का टाट आदि, बरजति=निषेध करना, ससिहि···नाँव=चन्द्रमा का नाम सीतकर क्यों रखा है? तरयौना=कान में पहनने का एक आभूषण, मुक्ति नहीं पाई, श्रुति=कान, बेद, नाक=नासिका; स्वर्ग, निदाघ=ग्रीष्म ऋतु, दाव=दाह, पावस प्रथम पयोद=वर्षा ऋतु का पहला बादल।

पृष्ठ ७८—दान=मदजल, सनेह=तेल, अपत=बिना पत्तों वाली, भखु=खाना, कनक=धतूरा, सोना, गँवई=गाँव में।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भूषण

पृष्ठ ८३—सरजा=शिवाजी की उपाधि, पुण्य चरित्र···बानी=शिवाजी के पुण्य चरित्र-रूपी सर में स्नान करके वाणी फिर पवित्र हो गई है, अस्मृति=स्मृति, हद=सीमा, समसेर=तलवार, दुनी=दुनिया, बाड़व=बाड़वाग्नि, रतिनाह=कामदेव, राम द्विजराज=परशुराम, दावा=दावाग्नि, पुरहूत=इन्द्र, गोल=समूह ।

पृष्ठ ८४—पातसाही=जहाँ तक बादशाह का आधिपत्य है, दिगनाग=दिग्गज, अमल=अधिकार (दखल), करबाल=तलवार, धुकार=रव, गर्जन, पारावार-समुद्र, कसी सै=मयूखैं, किरणें छितिपाल=पृथ्वीपति ।

पृष्ठ ८५—प्रतिभट=विरोधी योद्धा, किलकि=किलकारी मार के, कलेऊ=भोजन, खलक=संसार, दारागन=स्त्रियाँ, नबार···है=समय=कुसमय नहीं देखतीं, भाग खड़ी होती हैं, दिगम्बर=शिवजी, बिहद=बेहद, गबरन=(गजबर) हाथियों के, तारा सो···लगत=धूल से आच्छादित हो जाने के कारण सूर्य तारा-सा दिखाई पड़ता है ।

पृष्ठ ८६—बिहराने—फटगए, दारा=दाराशिकोह (औरंगजेब का बड़ा भाई), मंदर=प्रासाद, पहाड़, बिजन=पंखा, बियाबान जंगल, नगन=हीरे-जवाहरात, नग्न जड़ाती=जाड़ा सहन करती हैं, सपेत=श्वेत ।

पृष्ठ ८७—तिन ओठ गहे=ओठ में तृण धारण करने वाले, शरण लेने वाले, राजइन्द्र=ऐरावत हाथी, इन्द्र को अनुज=विष्णु (उपेन्द्र), हिराने=छिप गए ।

देव

पृष्ठ ६१—किंकिन=करधनी, किरीट=मुकुट, जुन्हाई=ज्योत्स्ना, (चाँदनी), मृग-मद=कस्तूरी, चोग=उबटन, मखतूल=रेशमी कपड़ा । ओप=आभा, रँगराइ=कृष्ण, रूसति=रुठती ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पृष्ठ ६२—छीन=क्षीण, छीनि लीनी-सी=मानो कुछ छीन लिया गया हो, आखर=अक्षर, जंबू=जामुन का वृक्ष, थिरात=ठहराती नहीं,

पृष्ठ ६३—फटिक=स्फटिक, आरसी=दर्पण, प्रगास=प्रकाश, बिबर=शून्य ।

पृष्ठ ६४—झिगोला=बच्चों के पहनने का वस्त्र, मदनमहीप=महाराज कामदेव, प्रातहि···चटकारी दै=प्रातःकाल कली खिलने पर जो हलका-सा शब्द होता है इसी को लेकर कवि ने यह कल्पना की है । पोत=जहाज, हुतासन=अग्नि ।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

पृष्ठ ५८—छिनहूँ=क्षण भर भी, चिरै=स्थिर होना, पेखिए=देखना, बेवहार=व्यवहार, परेखिए=परखना, औधि=अवधि, बरजि=निषेध करना, लोक=परम्परा ।

पृष्ठ ५९—बजाए बाज=बाजे बजाकर, घोषणा करके, संजोगी जन=एक साथ रहने वाले ।

पृष्ठ ६०—नवोढ़ा=नव विवाहिता, धुजा=ध्वजा, विहंगम=पक्षी, रितुपति=बसंत, प्यादे=पैदल ही, इतके=यहाँ (भारत) के पोहति=पिरोती है ।

पृष्ठ १०१—लोल=सुन्दर, त्रिविध भय=दैहिक, दैविक और भौतिक, भव-खंडन=सांसारिक दुःखों को दूर करने वाले, उधारण=उद्धार करने वाली, अंकम=अंक में, सुच्छ=स्वच्छ, बारिधिनाते··· मिटावत=ऐसा लाल होता है मानों वारिधि से उत्पन्न होने के नाते अपना भाई मानकर कमल चन्द्रमा का कलंक धो रहा है । दीठि=दृष्टि ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हरिऔध

पृष्ठ १०५—उन्मना=बे-मन, (मन उचटा-सा दीखता था), जलद—वपु=बादल से शरीर वाले, कृष्ण, वेदना-विवर्धिता=वेदना बहुत बढ़ रही थी, वातायनों=खिड़कियों, सौरभीला=सुरभित, पक्ष्म=बरौनियों में, वामता=शत्रुता।

पृष्ठ १०६—क्रिया—चातुरी=कार्य—कौशल से, तरल=हृदय= सहानुभूति शील, ताप उन्मूलती=बेचैनी दूर करती है, प्रशोभी= शोभित, क्लान्तियों=थकान, सद्‌गधों=अपनी सुगंधि से विकृत वसना=वस्त्र अस्त-व्यस्त (न होने देगा)।

पृष्ठ १०७—जलद—बादल, तप्तांगना=तप्त शरीर वाली (कृषक=ललना), वापिका=बावड़ी, पत्रशोभी=पत्रों से शोभित, अर्क=सूर्य, कियत=किसी, शब्दकारी=शब्द करने वाले, उपल—गठिता—मूर्ति=प्रस्तर=मूर्ति, अमित=बहुत-से।

पृष्ठ १०८—ज्योति—उत्कीर्णकारी=उनके नेत्रों से प्रकाश की किरणें निकल रही होंगी, सिक्त—पियूष=अमृत—सिंचित, कंतराका निशाका=राकेश, (चन्द्रमा), दुर्वृत्तता—दुष्टता, लोह···होंगे बनाते= लोहा (दुर्गुण) भी उनके स्पर्श (प्रभाव) से सोना (सद्‌गुण) हो जाता होगा।

पृष्ठ १४९—दुकूलादिक=वस्त्रों आदि को, विरह—विधुरा-वाम= विरह-पीड़िता राधा का, सुरति=याद, कंसारी=कृष्ण, भौन= भवन, क्वणित=शब्द करना।

पृष्ठ ११०—चिन्ता—विजित=चिन्ता ग्रस्त, बोध···सकूँगी= कैसे समझा सकूँगी।

जगन्नाथदास 'रत्नाकर'

पृष्ठ ११५—जल-जात=कमल, अध-ऊरध=नीचे और ऊपर का हिस्सा, बास बासना=सुगन्धि की इच्छा से, उठानितैं=ढंग से,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तौलौं···आँखियानितैं=भावावेग के कारण कंठ भर आया और बात आंसुओं के रूप में बह निकली।

पृष्ठ ११६—हौंस=उत्साह, दिवैया=देने वाली, फिरत··· फिरिबौ करैं=जिन कुन्जों में हर समय फिरा करते थे अब उनका चित्र हर समय आँखों के सामने रहता है, क्रीट=किरीट मुकुट, ठाकुर=स्वामी, धारे·· ब्रजबारी की=ब्रजगोपियों की बुद्धि फेरने का प्रण करके आये हो? अनारी=अज्ञान।

पृष्ठ ११७—जै है···बिचारी की=बूँद के मिल जाने से वारिधि का कुछ नहीं बनता-बिगड़ता, हाँ, बूँद का अस्तित्व खो जाता है, पुरवा=पुरवाई हवा, बिनु···बरसा की है=बिना घनश्याम के ब्रज में घर-घर वर्षा की बहार छाई रहती है अर्थात् सभी उनके विरह में शोक अश्रु बहाते रहते हैं, दरिबै=दरन (दूर करने को)

पृष्ठ ११८—पीत पट नंद · दई बाँसुरी—

पृष्ठ ११९—मानों सुधियात··है=मानो किसी भूली बात को याद कर रहे हों, भरके=भड़क गए, भय थरके=भय से काँप उठे, बिबुध=देवता, जाननि=सवारियों पर,

पृष्ठ १२०—बंक=टेढे, हाथ कानन···दीने=कानों पर हाथ रखकर, सगर-सुतनि···धावा=सागर के साठ हजार पुत्रों के पाप-नाश के लिए गंगावतरण हुआ था, टहरत=टहलत।

पृष्ठ १२१—बगारे=फैले हुए, रतनारे=लाल, काज=कारण।

मैथिलीशरण गुप्त

पृष्ठ २५—रन्जन=प्रिय (सिद्धार्थ), बन्धूक=एक लाल फूल, हरनेत्र=शिव का (तीसरा) नेत्र, दर्प=अभिमान, कन्दर्प=कामदेव, साल=दुःख देना।

पृष्ठ १२६—तन्वंगि=तनु (दुबले) शरीर वाली।

ष्ठ १२७—मनचीते=मन चाहे काम,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पृष्ठ १२८—लेकर···में=मानो समूचे संसार का विरह दुःख सहने के बाद अब वे एक दूसरे के हृदय में समाए जा रहे हों, अनावृत=बे-पर्दा।

पृष्ठ १२९—निष्फल=बेकार, जागरूक=सचेत।

पृष्ठ १३०—मैं···देख=संसार को असार समझकर ही छोड़ रहा हूं। रूपाश्रय···पात्र=तेरे पास सौन्दर्य है, पर कब तक? जब तक प्राण है, भीतर तो केवल कंकाल मात्र है। प्रछन्न=गुप्त, अपरिणाम=बुरा परिणाम।

पृष्ठ १३१—चिर जीवन निमित्त=मैं अमर जीवन की खोज में जा रहा हूँ, केतु=ध्वजा, मित्र=सूर्य।

पृष्ठ १३२—तू···ठाम=तू तो मेरे स्थान पर है ही, श्वेत=शुभ्र, श्याम=अशुभ।

पृष्ठ १३३—छंदक=सारथि का नाम, मृत्यु विजय···आज=आज मैं मृत्यु को जीतने जा रहा हूँ, निर्वाण=मोक्ष।

पृष्ठ १३४—शिशु-संसार=राहुल, जो मेरा संसार है, पुष्कर=कमल, पार्श्व-परिवर्तन=करवट बदल ले, उभय=दोनों, जाग···ज्वाला=मेरा हृदय जल रहा है।

जयशंकर 'प्रसाद'

पृष्ठ १४१—विभावरी=रात्रि, अम्बर···नागरी=उषा मानो आकाश रूपी पनघट पर तारों के घड़ों को डुबा रही है (तारे एक एक कर छिपते जा रहे हैं) किसलय=कोमल पत्ते, विहाग, हिमाद्रि=हिमालय, तुंग=ऊंचे।

पृष्ठ १४२—अमर्त्य=देव, विकीर्ण=फैली हुई, किसलय=कोपल, गोधूली=सान्ध्यबेला, धूमिल=धुँधले, पट=वातावरण, दीपक···सी=दीपक की लौ और भी उजली-सी दीख पड़ती है,···ज्यों=सुरभित लहरों संसर्ग से बुलबुला और भी सुन्दर हो जाता है, माधव-बसंत,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

निशीथ—रात्रि, आलिंगन···पढ़ती=आलिंगन के लिए आकर्षित करता हुई।

पृष्ठ १४३—इन्द्रजाल=जादू, सुहाग-कण=पराग, राग भरे=प्रेमपूर्ण, पुलकित···अंतर में=तुम्हारे दर्शन से मन पुलकित हो उठता है, वरदान सदृश=कल्याणमय, आँचल=लाज का हलका पर्दा, मोम-से=कोमल, मेरे सपनों···खोल रहा=जब मेरे मधुर सपने सत्य में परिणत होने वाले हैं।

पृष्ठ १४४—दूरागत=दूर से आने वाले, किरणों का रज्जु=साहस की सुकुमार डोर, रोमाली=रोमावलि, सुमन=भाव, प्राणमयी धारा=चेतना की लहरें, नयनों की···हो=नयनों में सरसता आ जाती है।

पृष्ठ १४६—फूलों=हृदय, पंखड़ियाँ=भाव, अभिनंदन=स्वागत में, मैं···धात्री हूँ=उस चंचल यौवन की हित साधिका हूं। पंचबाण=कामदेव, आवर्जना=निषेध।

पृष्ठ १४७—प्रतिकृति=प्रतिमा, शालीनता=विनम्रता, संसृति=संसार, निबिड़ निशा=गहन अंधकार, आलोकमयी=प्रकाश की।

पृष्ठ १४८—निस्संबल=बे सहारा, सुघराई=सुन्दरता, अनुदिन=हर समय, उपचार=प्रयत्न, उत्सर्ग=त्याग।

———

सुमित्रानंदन पंत

पृष्ठ १४५—स्तब्ध=शांत, तड़ित=बिजली, मधुमास=चैत का महीना (बसंत), बिथुरा=बिखेर देना।

पृष्ठ १५५—स्वर्ण···बोर=जब प्रात:काल संसार को सुख, सौरभ और श्री से सम्पन्न कर देता है। अलस=अलसाए हुए, तुमुल तम=घना अन्धकार, तन्द्रा=उनींदी अवस्था, खद्योत=जुगनू, कनक छाया=स्वर्णिम आभा, सकाल=प्रात:, कलित=सुन्दर।

पृष्ठ १५६—निर्विकार=विकार रहित, सस्मित गाल=मुसकान लिए हुए, उपक्रम=प्रयत्न।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पृष्ठ १५७—सैकत=बालू, तन्वंगी···विरल=गर्मी के कारण सूखकर जिसने पतली धार का रूप ले लिया है, विभा=आभा, वर्तुल=गोल, सत्वर=शीघ्र, तरणि=नौका, पुलिन=किनारे, प्रसन्न=ध्यान मग्न।

पृष्ठ १५८—तिर्यक=तिरछा, अराल=तिरछी, प्रतीप=उल्टा,

पृष्ठ १६०—है रेन···मानव=देश और काल की सीमाओं से परे हैं, मृण्मय=मिट्टी का दीप,

पृष्ठ १६१—दैन्य-जड़ित=दीनता भरी, विषण्ण=विषाद भरा।

पृष्ठ १६२—भूभृत=पर्वत

पृष्ठ १६४—क्षीरोदधि=क्षीरसागर, अहरह=रातदिन, प्रवाल=मूँगा।

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

पृष्ठ १६६—मुखरे=गुंजित

पृष्ठ १७०—रसावेश=मृदु भावों के आवेग में, मन मधुकर की पाँखें=मन करुणा से ओत-प्रोत है, अस्फुट स्वर=मौन भाव से।

पृष्ठ १७१—यामिनी गंधा=रजनी गन्धा।

पृष्ठ १७२—विरह-विदग्धा-विरह=पीड़ित, ऋजु=सरल।

पृष्ठ १७४—संसृति=संसार, दस्यु=आक्रमणकारी, बर्बर=असभ्य, दिग्वधू=वधू रूपी दिशा।

पृष्ठ १७५—स्कंध=कंधा, कपोत-ग्रीव=कबूतर की गर्दन जैसी सुन्दर।

पृष्ठ १७६—पार्श्व=पास, शाही अंगनाओं=बेगमों।

महादेवी वर्मा

पृष्ठ १८०—पखार=धो लेना, आर्द्र=सजल, विराग=विरक्ति, उदासीनता, अभिराम=सुन्दर नीरव-शांत।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पृष्ठ १८१—सौरभ=सुगन्धि, स्वर्ण वर्ण=सुनहरी रंग (डूबते हुए सूर्य का रंग, गोधूली=सन्ध्या, तिमिर=अधन्कार, मूक=मौन, तरिणी=नाव।

पृष्ठ १८२—मेघव्रती=चातक, अकिंचन=निर्धन, दीपक=प्राण। शलभ=पतंगा, असंख्यक=अनगिनत।

पृष्ठ १८३—बंदी है=छिपी हुई है, अक्षय=अमर।

पृष्ठ १८४—स्मित=मुसकान, आहत=घायल, निर्झरिणी=नदी, धूमिल=धुँधली, रश्मिवलय=किरणों का घेरा, सित=श्वेत, रजत=चाँदी (चाँदनी), चल=चंचल।

रामधारीसिंह 'दिनकर'

पृष्ठ १९१—नगपति=पर्वतराज हिमालय, किरीट=मुकुट, निदान=हल, दृगोन्मेष=आखें खोल।

पृष्ठ १९२—अमिय=अमृत, विगलित=द्रवित, सीमापति=सीमा की रक्षा करने वाला, चतुर्दिक=चारों ओर, व्याल=सर्प, द्रुपदा=द्रौपदी, सिकता=रेत।

पृष्ठ १९३—भग्नावशेष=खण्डहर।

पृष्ठ १९४—निनाद=रव।

पृष्ठ १९५—गुह्यतम=अत्यंत रहस्यमय, हस्तामलक=हाथ का आँवला=प्रत्यक्ष निष्णात=चतुर, विधु=चन्द्रमा।

पृष्ठ १९६—आलोक=प्रकाश, भृत्य=दास, छद्म=धोखा।

पृष्ठ १९७—प्राचीर=दीवार, भ्रमित=भ्रम में पड़ी हुई, प्रणय=प्रेम।

पृष्ठ १९८—विनिर्गत=निकला हुआ, समता=विधायक=बराबरी देने वाला।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पृष्ठ १६६—साम्य=बराबरी, रसा=पृथ्वी, गीत अगीत···है=भाव को व्यक्त कर देना अच्छा है या मौन रह उसे मन ही में रहने देना, उपलों=पत्थरों, पर्ण=पत्तों से, तटिनी=नदी।

Sri Pratap Singh
Library
Srinagar.

SPS
891.431 B 17 M
19688

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust